सामयिक प्रकाशन

३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

रमेश उपाध्याय

माता, पुष्पा जीजी और गंगा बुआ को
जिनसे बचपन में बहुत लंबी-लंबी कहानियां सुनीं।

क्रम

राष्ट्रीय राजमार्ग : जनवादी कथा-लेखन में एक नया बदलाव

'कथन' के बारहवें अंक (मई-जून, १९८२) में छपी रमेश उपाध्याय की कहानी 'राष्ट्रीय राजमार्ग' मुझे बहुत अच्छी लगी। एक जनवादी लेखक के रूप में रमेश के रचना-क्रम में इधर जो एक विशेष मोड़ आया है, उसकी ओर मैं इस कहानी की चर्चा के माध्यम से पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। मध्यवर्गीय पात्रों को उनकी पारिवारिक समस्याओं से जूझते दिखाकर अथवा किन्हीं ज्वलंत सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में उनकी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करके रमेश निम्न-पूँजीजीवी वर्ग की उन विभिन्न कमजोरियों के बहुत अच्छे व्यंग्य-चित्र प्रस्तुत करते रहे हैं, जो इस वर्ग के लोगों को उच्च वर्ग का पिछलग्गू बनाये रखती है, उनकी महानुभूति के दायरे को अतिसीमित करती है, टुच्चे स्वार्थों में उलझाये रखकर व्यापक सामाजिक समस्याओं से उन्हें उदासीन बनाती हैं तथा उनके दृष्टिकोण को इतना संकुचित कर देती है कि वे अपनी वस्तुस्थिति की सही समझ हासिल करने अथवा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाने में असमर्थ हो जाते है। इस व्यंग्य को अधिक धारदार तथा विश्वसनीय बनाने के लिए रमेश कुछ ऐसे मध्यवर्गीय पात्रों को भी अपनी अनेक कहानियों में सामने लाते रहे हैं, जो पूँजीजीवी मूल्य व्यवस्था के स्वस्थ पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हुए वैसी ही परिस्थितियों और समस्याओं के संदर्भ में कुछ

भिन्न विकल्प चुनते हैं तथा निरंतर आत्मसंघर्ष द्वारा धीरे-धीरे अपनी निजबद्धता और बुजदिली से निजात पा लेते हैं और अपने विभ्रमों को भी दूर करते चलते हैं। जिन कहानियों मे इस प्रकार के पॉजिटिव मध्यवर्गीय पात्र प्रधान होते हैं, उन कहानियों को वक्तव्यप्रधान और विचारधारात्मक बहसों के बोझ से दबी हुई बताया जाता है, परन्तु कुल मिलाकर रमेश एक ऐसे जनवादी कहानीकार के रूप मे अपनी पहचान बना चुके हैं, जो हिन्दीभाषी क्षेत्र मे बसने वाले मध्यवर्गीय तबके के लोगों की मानसिकता का विशेषकर पारिवारिक-सामाजिक परिस्थितियों के दबावों की ओर उनकी प्रतिक्रियाओं का, बहुत ही सही आलोचनात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इसके अलावा श्रमजीवी तबके से संबंध रखने वाले पात्रों को लेकर सामाजिक संघर्ष में उनकी भूमिका को स्पष्ट करने वाली कहानियाँ भी रमेश उपाध्याय ने लिखी हैं, किन्तु उनकी ऐसी कहानियों के बारे मे यह एक आम धारणा बन गयी है कि वे जनवादी प्रतिबद्धता के अतिरिक्त उत्साह में यथार्थ की जटिलताओं को किंचित् सरलीकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं और केवल उन्हीं कहानियों मे, जहाँ श्रमिक वर्गों के संघर्ष तथा उन संघर्षों के माध्यम से उभरकर आने वाली क्रान्तिकारी चेतना सीधे-सीधे कथ्य नहीं बन जाते, बल्कि एक पृष्ठभूमि का अथवा एक संदर्भ-बिंदु का ही काम करते हैं, अधिक प्रखरता एवं विश्वसनीयता आ पाती है।

यह संभव है कि आलोचकों की इन टिप्पणियों से प्रभावित होकर कि उनकी कहानियों में वैचारिक संघर्ष को सीधे-सीधे बहसों के रूप में ही ज्यादातर रख दिया जाता है और पात्रों तथा स्थितियों के चित्रण मे इकहरापन आ जाता है, रमेश उपाध्याय ने कुछ नये शिल्पगत प्रयोग आरम्भ किये और कुछ जटिल रूपकों अथवा मिथक कथाओं को केंद्रीय आधार बनाकर कहानी की चुनी हुई विषयवस्तु को प्रस्तुत करने लगे। 'पानी की लकीर', 'नदी के साथ एक रात', 'कामधेनु', 'कल्पवृक्ष' तथा 'दरम्यानासिंह' जैसी कहानियों का इस संदर्भ में जिक्र किया जा सकता है। इन सभी कहानियों मे कहानीकार अपनी बात को पाठक तक पहुँचाने की ऐसी शैली अपनाता है, जिसमें एक बहुआयामी रूपक अवश्य होता है जिसमे विस्तार और विकास की संभावनाएँ होती है और जिसे प्रस्तुत करते समय रचना-

कार प्रत्येक छोटे विवरण को अनेक अर्थ प्रदान करता चलता है । किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि फैंटेसी और रूपकों का सहारा लेने की रमेश के कहानीकार की इस प्रवृत्ति को हमें केवल शिल्पगत मान्यता प्राप्त करने का प्रयास मात्र नहीं मान लेना चाहिए । वास्तव में इन शिल्पगत प्रयोगों के पीछे कहानी की वस्तु में भी एक विशिष्ट बदलाव की अनिवार्यता व्यक्त हो रही है ।

ज्यों-ज्यों रमेश उपाध्याय के लेखकीय व्यक्तित्व का जनवादी स्वरूप उभरता गया है, त्यों-त्यों तत्कालीन वस्तुस्थिति की उनकी समझ भी अधिक परिपक्व होती गयी है । इसीलिए कहानियों के केंद्र में अभी भी मध्यवर्गीय पात्र बने रहने के बावजूद उनकी रचनाओं में तत्कालीन वस्तुस्थिति के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण पक्ष अधिक पैनेपन के साथ हमारे सामने आने लगे हैं, जो पहले या तो अछूते रह जाते थे अथवा अस्पष्ट बने रहते थे । मध्यवर्गीय व्यक्ति के पारिवारिक अथवा समूहगत सदर्भ जिस व्यवस्था द्वारा निर्मित होते है, उसके विभिन्न अधिरचनात्मक ढाँचो की कार्यविधि क्या है, व्यक्ति पर किन-किन माध्यमो से और किस प्रकार वे प्रभाव डालते हैं तथा उसके लिए वे निश्चित परिस्थितियाँ किस प्रकार तैयार होती हैं जिनमें उसे जीना पड़ता है और गलत या सही विकल्पों का चुनाव करना होता है—मध्यवर्गीय व्यक्ति की नियति से सबधित ये केंद्रीय मुद्दे रमेश उपाध्याय पहले अपनी कहानियो मे ठीक तरह से नहीं उठा पाते थे और इसीलिए कहानियों में वस्तुस्थिति को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत करने की झलक नजर आती थी । सत्ता के विभिन्न प्रश्नों का उद्घाटित किये बिना तथा उनकी कार्यविधि की विशिष्टता को व्याख्यायित किये बिना और पिछले दस-पन्द्रह सालो के दौरान व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप मे जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आते चले गये हैं उन्हें रेखांकित किये बिना मध्यवर्गीय व्यक्ति के सामाजिक सदर्भ को ठीक ढग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता और इसीलिए रचना में एक प्रकार की अमूर्तता अथवा इकहरापन बना रहता है । जनवादी कहानीकारों की जिस कोटि में रमेश उपाध्याय ने अपना प्रमुख स्थान बनाया है, वे अधिकतर मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिकता का आत्मनिष्ठ चित्रण करने अथवा विशिष्ट [illegible]

या चुनौतियों से निपटने मे उनकी प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करने अथवा वैचारिक सघर्ष द्वारा अपनी समझ को निखारने के उनके प्रयासो को व्यक्त करने मे ही अपनी अधिकांश शक्ति जुटाते रहते है और सत्ता के समूचे स्वरूप मे आनेवाले बदलावो का रेखांकित करने अथवा उसके प्ररूपों का विश्लेषण या चित्रण प्रस्तुत करने की दिशा में उन्होने पर्याप्त सक्षमता अभी तक नही दिखायी है। किन्तु रमेश उपाध्याय इधर सत्ता के प्ररूपो के दमनकारी स्वरूप को तथा मध्यवर्गीय व्यक्तियो को अपने भीतर बहुत ही अमानवीय शर्तो पर फिट करने के उनके तरीकों को व्यक्त करने की जिम्मेदारी सँभालने का प्रयास करने लगे है और उनकी कहानियों की वस्तु में आनेवाले इस बदलाव की अनिवार्य लॉजिक के तहत ही उन्होंने वे शिल्प सम्बन्धी प्रयोग किये है जिनका जिक्र मैंने ऊपर किया है।

क्योकि वस्तु के अनुरूप शिल्प गढने मे कुछ समय लग जाता है और क्योकि रचना-प्रक्रिया मे आनेवाला बदलाव नयी वस्तु के दबाव के तहत कई बार काफी हद तक बिना किसी सचेत अथवा सुनियोजित प्रयास किये ही आरम्भ हो जाता है, अतः कुछ कहानियों में वस्तु और रूप की अन्त.-क्रिया बहुत अधिक सधी हुई और अधिक निखरी हुई नही दिखायी देती। 'राष्ट्रीय राजमार्ग' की यह विशेषता है कि जिस नयी वस्तु के साथ रमेश अपनी इधर की कहानियो में जूझते रहे है, वह यहाँ अपने निखरे हुए रूप में हमारे सामने आती है, क्योंकि यहाँ आते-आते वह अपना उपयुक्त रूप प्राप्त कर लेती है। इसीलिए यहाँ वे खामियाँ हमें बहुत कम दिखायी देंगी जिनका जिक्र 'कामधेनु' अथवा 'पानी की लकीर' जैसी कहानियों के संदर्भ में कुछ लोगों ने किया है।

'राष्ट्रीय राजमार्ग' एक ऐसा केंद्रीय रूपक है जो सत्ता के विभिन्न अधिरचनात्मक प्ररूपों को स्पष्ट करने की क्षमता रखता है। सड़क-निर्माण एक सार्वजनिक सेवा होने के नाते शासक वर्गो द्वारा अपनी व्यवस्था को एक कल्याणकारी राज्य (वैलफेयर स्टेट) के रूप मे जनता के सामने प्रस्तुत करने के उद्देश्य को बड़े स्वाभाविक ढग से लक्षित करता है। पिछले बीस-तीस सालों के दौरान संकट के निरन्तर गहराते जाने के कारण शासकीय व्यवस्था का यह चेहरा कैसे धीरे-धीरे विकृत होकर अविश्वसनीय बनता

गया है, इसको रचनाकार ने 'राष्ट्रीय राजमार्ग' में इस कुचक्र के माध्यम से बड़ी स्पष्टता के साथ दिखाया है।

इमरजेंसी के बाद विशेष तौर पर शासनतन्त्र का दमनकारी स्वरूप उसकी उदारवादी सदिच्छाओं को तोड़ता हुआ आम जनता के सामने आने लगा था और तब से लेखकों के सामने यह चुनौती प्रमुख हो गयी कि सत्ता के इस रूप को उपयुक्त शिल्प द्वारा कलात्मक ढंग से जनता के सामने प्रस्तुत किया जाये, ताकि उसके विभ्रमों के टूटने की प्रक्रिया तेज हो सके। रमेश ने इस कहानी मे यह दायित्व बहुत ही सरल किन्तु प्रभावशाली भाषा और शिल्प का चुनाव करके ऐसी दक्षता के साथ निभाया है कि आम पाठक तक भी कहानी अपना सदेश पहुँचाने मे सफल हो जाती है। वही राजमार्ग जो अपनी सभी कमियो के बावजूद पहले आम आदमी को कम-से-कम चलने की सुविधा तो देता था, अब उत्पीड़न और यातनाओं का बायस बन गया है और इस पर अब कई ऐसी जानलेवा दरारें पड़ गयी है जिनकी मरम्मत नही की जा सकती। उस पर जगह-जगह आम आदमी को लूटने और आतंकित करने वाली सुरक्षा-चौकियाँ बना दी गयी है जिनका काम जनता को सुरक्षा देना नहीं, व्यवस्था को सुरक्षित रखना है। इस प्रकार इजारेदार तत्वों के नेतृत्व में काम करने वाले शासक वर्गों के गठबंधन द्वारा सामाजिक विकास का जो पूंजीवादी रास्ता इस देश में अपनाया गया है, उसकी असलियत को इस कहानी का केंद्रीय रूपक अच्छी तरह स्पष्ट कर देता है।

सुधार या संशोधन की कितनी ही कोशिशें की जायें, उनसे बात बनने वाली नहीं है। जैसा कि कहानी का एक पात्र सत्यप्रिय श्रीवास्तव आरंभ में स्पष्ट कर देता है, इस सड़क की बुनियाद ही गलत है और बुनियाद गलत होने के कारण इसकी मरम्मत के सभी प्रयास अन्ततः निरर्थक साबित होते हैं और इस सड़क को छोड़कर नये सिरे से दूसरी ही सड़क बनानी पड़ेगी।

इस प्रकार रूपक के माध्यम से कहानी पाठक के सामने यह स्पष्ट कर देती है कि विकास के जिस रास्ते पर हम चलते आये हैं, उसको छोड़ कर दूसरा रास्ता अपनाना होगा। कहानी यह भी स्पष्ट कर देती है कि आर्थिक विकास का दूसरा रास्ता अपनाने की यह एक अनिवार्य शर्त है कि शासनतन्त्र में भी बुनियादी बदलाव आये। मौजूदा शासनतन्त्र के बने रहते दूसरे किस्म के आर्थिक विकास को चुनने की आशा करना ऐसे अमूर्त आदर्शवाद का सूचक है जिसका हश्र वही होता है जो इस कहानी के पात्र सत्यप्रिय श्रीवास्तव का हुआ है। इस प्रकार सुधारवादी विभ्रमों की विफलता को भी कहानी अपने केंद्रीय रूपक के माध्यम से रेखांकित करती है।

क्योंकि सड़क-निर्माण विभाग वास्तव में शासनतन्त्र का एक काफी बड़ा विभाग भी है, इसलिए 'राष्ट्रीय राजमार्ग' का केंद्रीय रूपक सरकारी विभागों में काम करने की उन शर्तों और अनिवार्यताओं को भी हमारे सामने लाता है, जिनके तहत मध्यवर्ग के चुने हुए तत्त्वों को शासक वर्ग अपनी सेवा में नियुक्त करता है। इस प्रकार यद्यपि रमेश की इस कहानी में भी फोकस तो पहले की तरह मध्यवर्गीय पात्रों पर ही रहता है, पर अब उनके वैकल्पिक निर्णयों और प्रतिक्रियाओं को स्वायत्त रूप में प्रस्तुत करने के बजाय यहाँ उन्हें निर्धारित करने वाले सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत दिखाया जाता है और इस प्रकार मध्यवर्गीय मानसिकता या नैतिक विशिष्टता के चित्रण में पहले की रचनाओं की तुलना में अधिक मूर्तता आ जाती है। माधोप्रसाद, रामजी पटेल, करुणाशंकर और सत्यप्रिय श्रीवास्तव सभी मध्यवर्गीय पात्र हैं, किन्तु इनकी भिन्नताओं को समझने के लिए यहाँ हमें केवल मनोविज्ञान का सहारा नहीं लेना पड़ता, बल्कि इन

पात्रों के व्यक्तित्व को निर्मित करने वाली ठोस परिस्थितियों का सदर्भ हमारे सामने रहता है। उदाहरण के लिए सत्यप्रिय श्रीवास्तव और माधोप्रसाद के वैकल्पिक निर्णयो की भिन्नता को समझने मे हमें इस बात से सहायता मिलती है कि उनमें से एक संभ्रात परिवार का प्रभावशाली व्यक्ति है और दूसरा पिछड़ी हुई जाति से ऊपर उठा लिया गया व्यक्ति है, जिसे अपने वर्ग मे एकदम अलग होना पडता है और इस ढाँचे में अपनी जगह पर बने रहने के लिए कही ज्यादा भोंडे समझौते करने पड़ते हैं।

चार चुने हुए प्रातिनिधिक पात्रों के माध्यम से मध्यवर्ग के द्वारा चुने गये चार प्रातिनिधिक विकल्पो को इस कहानी मे हमारे सामने ला दिया जाता है। एक ओर तो ऐसे मध्यवर्गीय आदर्शवादी विद्रोही लोग हैं, जो सत्यप्रिय श्रीवास्तव की तरह व्यवस्था के भीतर रहकर उसको बदलना चाहते हैं, दूसरी ओर अन्तर्मुखी आदर्शवादी व्यक्ति हैं जो करुणाशकर की तरह व्यवस्था से सैद्धातिक अलगाव बनाये रखकर भी उसको कारगर चुनौती नही दे पाते। तीसरी कोटि उन मजबूर लोगों की है जो व्यवस्था की शर्तों पर ही आत्मसमर्पण करते चलते हैं किन्तु इसके साथ ही माधो-प्रसाद की तरह तीव्र अपराध-बोध से ग्रस्त रहते हैं। चौथी कोटि नैतिक काहिली से ग्रस्त उन महानुभावो की है, जिनकी इन्सानियत लगभग पूरी की पूरी खत्म हो चुकी है, पर जिन्हें रामजी पटेल की तरह अपने भयंकर अमानवीयाचरण के बावजूद किसी पीडा का अनुभव नहीं होता। इन चार प्रातिनिधिक विकल्पों के अलावा भी व्यवस्था से निपटने के कुछ अन्य विकल्प सम्भव है, किन्तु 'राष्ट्रीय राजमार्ग' की यह एक विशिष्ट उपलब्धि है कि यहाँ ऐसे चार विकल्पों को एक साथ समेट कर प्रस्तुत कर दिया गया है जो लेखक की कहानियो में पहले अलग-अलग दिखाये जाते थे, और यहाँ इन चारों ही विकल्पों को व्यवस्था द्वारा निर्मित विशिष्ट संदर्भ के तहत प्रस्तुत किया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ बड़ी कुशलता के साथ यह भी दिखाया गया है कि शासनतन्त्र के अन्तर्गत काम करने की शर्तों में कैसे धीरे-धीरे बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है और कैसे शासनतन्त्र उत्तरोत्तर अधिक असहिष्णु होता चला गया है, जिससे व्यवस्था में फिट होने वाले मध्यवर्गीय तत्वों की रचनात्मक सम-

ताओं के सीमित सार्थक उपयोग की सम्भावनाएँ भी उत्तरोत्तर संकुचित होती चली गयी हैं। सत्यप्रिय श्रीवास्तव और माधोप्रसाद की नियतियाँ इन दो अवस्थाओं की सूचक हैं। सत्यप्रिय श्रीवास्तव को पहले अपनी रचनात्मक क्षमताओं का उपयोग करने की काफी छूट थी, लेकिन अब ऐसे सब तत्वों के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख अपनाया जाता है और उनकी रचनाशीलता को नष्ट करने लिए तरह-तरह के ढग अपनाये जाते है। अब शासनतन्त्र को माधोप्रसाद की-सी 'सक्रिय बेईमानी' ज्यादा रास आने लगी है।

रमेश की कहानियो में वैचारिक बहसों और वक्तव्यो का खासा स्थान रहता है। इस कहानी मे भी विभिन्न स्थलों पर व्यवस्था के चरित्र के बारे में तथा उसके प्रति पात्रो द्वारा अपनाये जाने वाले रवैये के बारे मे कुछ वक्तव्य विद्यमान हैं, किन्तु इन वक्तव्यों में वह अमूर्तता नही दिखायी देती, जो लेखक की पहले की कुछ लम्बी रचनाओ में मिलती है। यहाँ तर्क चाहे कितने ही वजनदार या हल्के हों, उनकी सार्थकता केवल सैद्धान्तिक धरातल पर नही आँकी जा सकती, बल्कि पात्रों की मनःस्थिति और उन पर व्यवस्था के द्वारा डाले जाने वाले दबावों के विशिष्ट संदर्भ में ही इस सार्थकता को आँका जा सकता है। इस विशिष्ट सामाजिक संदर्भ के विद्यमान होने से ही इन स्थलो पर वह अमूर्तता अथवा इकहरापन नही आता जो कि सपाटबयानी की ऐसी पद्धति अपनाने वाली अन्य रचनाओं में रहता है। हाँ, एक विशेष प्रकार की अमूर्तता इस कहानी के शिल्प मे भी अनिवार्य रूप से बनी रहती है, जिसकी ठीक-ठीक व्याख्या करना जरूरी है। क्योंकि लेखक यहाँ पाठक को पात्रों की मानसिकता में ही उलझाये रखना नही चाहता, बल्कि उस मानसिकता के मूल में काम करने वाली नियामक सामाजिक शक्तियो की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करना चाहता है, इसलिए इस कहानी मे प्रयुक्त होने वाला केंद्रीय रूपक तथा अन्य घटनाएँ और बिंब एक निश्चित उद्देश्य को लेकर निर्मित किये हुए हैं। कहानी का शिल्प उस आवयविकता का निर्वाह करता हुआ नही दिखायी देता, जिसकी अपेक्षा हम कथा-लेखन के 'नयी कहानी' के दौर से करने लगे हैं, और जिसके आधार पर ही हम अक्सर रचना की मूर्तता को आँकते है। दर-

असल आवयविकता की यह अवधारणा 'अनुभव की प्रामाणिकता' जैसे 'नयी कहानी' के आग्रह पर आधारित है और [illegible] सामने [illegible] संपूर्ण संसार की रचना की माँग करती है, जिसमें वह डूबा रहे और जो उसे वास्तविक ससार की लगभग समानांतर इकाई दिखायी देने लगे। मनोवैज्ञानिक धरातल पर सघन मूर्तता का आभास देने वाले ऐसे शिल्प की कुछ सीमाएँ होती हैं। वह [illegible] आसानी से न पकड़े जा सकने [illegible] को बाध्य नहीं करता। इसके विपरीत ऐसे शिल्प के रहते रचना के ससार में भावात्मक रूप से खो जाने का खतरा पाठक के लिए बना रहता है और रचना के माध्यम से वस्तुस्थिति की सही समझ प्राप्त करके अपने आसपास के समाज को बदलने की प्रक्रिया में निर्णायक हस्तक्षेप करने की जरूरत वह महसूस नहीं करता। बर्टोल्ट ब्रेश्ट ने नाटक के क्षेत्र में इसीलिए नये परीक्षण किये थे, क्योंकि नाटक का परम्परागत शिल्प दर्शक पर वैसा विचारोत्तेजक और सक्रिय हस्तक्षेप करनेवाला प्रभाव नहीं डाल पाता था जिसकी वे अपेक्षा करते थे।

निश्चित उद्देश्य से लिखी जाने वाली रचना पाठक को शिक्षित करने का एक गम्भीर प्रयास होती है और इसीलिए वह कुछ हद तक कृत्रिम और अमूर्त भी बनी रहती है। परन्तु जब पाठकों की मनोवैज्ञानिकता को निर्धारित करने वाले सामाजिक ढाँचे पर रचनाकार की नजर हो और उसे व्याख्यायित करने की जिम्मेदारी को वह प्रमुख मानता हो, तो ऐसे अलगाव और अमूर्तन का शिल्प उसे ज्यादा उपयुक्त दिखायी देता है।

'राष्ट्रीय राजमार्ग' में भी अपनी कथावस्तु के अनुरूप ऐसे शिल्प का प्रयोग किया गया है जहाँ प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना, बिंब, केंद्रीय रूपक—सब कुछ स्वतःस्फूर्त न होकर सोच-समझकर निर्मित किया हुआ दिखायी देगा। मगर इस प्रकार का अमूर्तन का प्रभाव इस कहानी की कोई कमजोरी नहीं, बल्कि सायास उत्पन्न किया हुआ प्रभाव है। जनवादी लेखन की वस्तु में इधर जो परिवर्तन आया है, उसकी अनिवार्य लॉजिक के तहत ही यह शिल्पगत परिवर्तन भी रचना में जरूरी हो गया है।

अमूर्तन के अलावा और भी कई शिल्पगत प्रयोग हैं जो इस रचना मे यथार्थ के भ्रम के प्रभाव को तोडते है और लेखक और पाठक के बीच निश्चित उद्देश्य मे परिचालित एक सार्थक अन्त.क्रिया के रूप में इसे प्रस्तुत करते हैं। इसीलिए पाठक की रचना मे साझेदारी पहले से कहीं अधिक सक्रिय और सचेत हो जाती है।

'राष्ट्रीय राजमार्ग' जैसी कहानियों की यथार्थपरकता को आँकने के लिए हम पात्रों के चित्रण में झलकने वाली मनोवैज्ञानिक जटिलता को सीधे-सीधे आधार मान कर नही चल सकते। इसके लिए यह देखना अधिक उपयुक्त होगा कि जिन सामाजिक मुद्दों की ओर रचना हमारा ध्यान आकृष्ट कर रही है, उनकी ओर कहानीकार हमारी प्रतिक्रियाओं को अधिक धारदार और जागरूक बनाने में कहाँ तक सफल हो सका है। इन मुद्दों के बारे में यदि कहानी पाठक को नये सिरे से सोचने पर मजबूर नही करती और व्यवस्था द्वारा इन मुद्दों के बारे में उसके अन्दर पनपायी जाने वाली समझ की असंगतियों को तीखेपन के साथ नही उभार पाती, तो उसकी यथार्थपरकता अथवा मूर्तता कमजोर बनी रहेगी।

रमेश उपाध्याय की इधर की रचनाओं की शक्ति और सीमाओं को समझने के लिए हमे यही तरीका अपनाना चाहिए। ऐसा नही है कि रचना-क्रम के मौजूदा दौर मे पहुँचने के बाद उन्होंने अपने पिछले लेखन की कमजोरियों से पूरी तरह छुटकारा पा लिया है। तत्कालीन सामाजिक जीवन से सम्बन्धित कई ज्वलन्त मुद्दों के बारे मे उनकी लेखकीय प्रतिक्रियाएँ अभी भी मध्यवर्गीय जनवादिता की सीमाओं को नहीं तोड़ सकी है। तत्कालीन वस्तुस्थिति के बारे मे उनकी सोच में आत्मतुष्टि की वह प्रवृत्ति अभी पूरी तरह गायब नही हुई, जो पिछली कहानियों में उनकी बौद्धिक जागरूकता और नैतिक गम्भीरता को सीमित कर देती थी। लेखक की जनवादी प्रतिबद्धता मे निखार आने के साथ-साथ यह प्रवृत्ति कमजोर अवश्य पड़ती गयी है, परन्तु 'राष्ट्रीय राजमार्ग' जैसी रचनाओ में भी यह सूक्ष्म रूप मे विद्यमान रहती है और उनके प्रभाव को कुछ हद तक सीमित करती है। लेकिन यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है कि 'राष्ट्रीय राजमार्ग' जैसी कहानियाँ जनवादी लेखन मे आये

एक विशिष्ट बदलाव की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। इस प्रकार की कहानियों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि जनवादी लेखन आजकल एक ऐसे पड़ाव पर है, जहाँ वस्तु और शिल्प दोनों में ही महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन हो रहे हैं।

डॉ० ओमप्रकाश ग्रेवाल

ले आओ। बडी भूख लगी है। सुबह से विजिट पर हूँ, और अभी फिर एक जगह जाना है। सोचा था, गुरु के साथ घर जाकर लच लूंगा, पर अब यहीं सही। जल्दी से ले आओ।"

पत्नी असमजस में पड़ गयी। बोली, "केवल खिचड़ी बनी है भाई साहब।"

"तो क्या हुआ ? क्या मैं खिचड़ी खा नही सकता ? और फिर तुम्हारे हाथ की बनी हुई ! तुम तो भाभी, घास भी उबाल दो तो स्वाद आ जाये।"

पत्नी ने मेरे लिए परोसी हुई खिचड़ी जब्बरसिंह को पकड़ा दी और अपने लिए बची हुई दूसरी थाली में डाल कर मुझे दे दी। मैं सोचने लगा, अब यह क्या खायेगी ? लेकिन जब्बरसिंह ने चम्मच को फावड़े की तरह चला कर खिचड़ी को मिट्टी की तरह खोदा और मुँह में भर लिया। बलबलते भरे मुँह से तत्काल "बहुत बढ़िया बनी है" भी कह डाला। पत्नी कृतार्थ हो गयी। मैं समझ गया, अब यह हफ्तों जब्बरसिंह का गुणगान करेगी—देख लो, कितने बड़े आदमी हैं, फिर भी गरूर नाम को नहीं है।

खाते-खाते जब्बरसिंह ने मुझसे कहा, "गुरु, आज वाकई बहुत जबर्दस्त केस फँसा है। ऐसी तोप चीज के पास तुमको ले चलूँगा जिससे मिलने के लिए बडे-बड़े सेठो और मिनिस्टरो तक को बाहर बैठ कर इंतजार करना पड़ता है।"

मैंने सोचा, इसका यही तरीका है। यह मुझे इसी तरह भ्रष्ट करना शुरू करता है। पहले किसी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से मिलवाने का प्रलोभन देगा, फिर उसके यहाँ होने वाली आवभगत का, फिर बड़े लोगों से परिचय के लाभ बतायेगा, और मैं फिर भी मना करूँगा तो कहेगा—गुरु, तुमको चलना ही होगा, मेरी इज्जत का सवाल है, मैंने उनसे कह रखा है कि तुम आ रहे हो। इस पर भी यदि मैं अड़ा रहा तो यह मेरी पत्नी से कहेगा—इन्हें समझाओ भाभी, जरा-से नाटक से अगर सौ-पचास रुपये मिल जायें तो क्या हर्ज है ? और पत्नी मुझसे कहेगी—चले क्यो नहीं जाते हो ? रुपये घर में आते बुरे लगते हैं ?

शुरू में लगभग हर बार यही होता था और अंततः मुझे जब्बरसिंह के साथ जाना ही पड़ता था। थोड़ी देर के नाटक से सौ रुपये मिलने का तर्क मेरे सारे आदर्शवाद से बड़ा बैठता था।

नहीं, मैं अभिनेता नहीं था। दिल्ली से बीस-बाईस किलोमीटर दूर एक देहाती पशु-चिकित्सालय में डाक्टर था। पहले जब्बरसिंह भी वहीं था। हम दोनों सहपाठी भी रहे हैं और सहकर्मी भी। फिर यह फर्क कैसे आया कि मैं अभी तक पुरानी दिल्ली में डेढ़ सौ रुपये के दड़बे में अपनी पत्नी और चार बच्चों के साथ रहने वाला ढोर-डंगरों का डाक्टर बना हुआ था और जब्बरसिंह बड़ा आदमी बन गया था, इसकी एक कहानी है। उस कहानी को सुन कर ही आप समझेंगे कि मुझे क्या नाटक करना पड़ता था।

जब्बरसिंह मेरा सहपाठी और सहकर्मी था, लेकिन हमारी दोस्ती कुछ अजीब-सी थी। हमें जानने वाले कहा करते थे—तुममें से एक पैसे वाला और दूसरा दिमाग वाला। लक्ष्मी और सरस्वती की यह जोड़ी जमती कैसे है? उनकी बात ठीक थी। जब्बरसिंह पैसे वाला था, लेकिन अपने ठस्स दिमाग के कारण कुछ और नहीं बन सकता था, इसलिए जानवरों का डाक्टर बन गया था। और मैं गरीब होने के कारण अपने तेज दिमाग के बावजूद और कुछ नहीं बन सका था, इसलिए। हमारी दोस्ती का आधार केवल यह था कि स्कूल के दिनों में सदाचार और शिष्टता का पुरस्कार हम दोनों में से ही किसी एक को मिला करता था।

जिसको शुरू से ही पैसे का अभाव रहा हो, और जो महत्त्वाकांक्षी बहुत हो, वह या तो भगवान का भक्त होकर अध्यात्म में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को डुबा कर मार डालता है, या मेरी तरह उन्हें कल्पना की ऊँची-ऊँची उडानों के सहारे जिंदा रखता है। मैं योजनाएँ बहुत बनाता था, और मेरी हर योजना ऐसी होती थी कि सफल हो जाये तो मुझे करोड़पति बना कर ही छोड़े। लेकिन कोई भी योजना हो, थोड़ी-बहुत लागत माँगती है, और लागत मैं लगा नहीं सकता था। लगा सकता तो राजकपूर जैसा फिल्म-निर्माता, या ओबेराय जैसे होटलों का मालिक, या विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसी किसी संस्था का महानिदेशक, या पेनगुइन जैसी अंतर्राष्ट्रीय

प्रकाशन मस्था का स्वामी होता। और कुछ नही तो जब्बरसिंह तो बन ही सकता था! मगर लागत कहाँ थी। जब्बरसिंह के पास थी, जब्बरसिंह बन गया। और मेरी योजना से!

हुआ यह कि आज से सात-आठ साल पहले जब्बरसिंह का ट्रांसफर उस अस्पताल मे हो गया, जिसमें मैं काम करता था। शाम को हम दोनो साथ ही बस मे दिल्ली वापस आते थे। एक दिन उसके साथ बस में बैठे-बैठे मेरे दिमाग मे एक योजना कौंधी। मैंने कहा, "जब्बर यार, मुझे एक आइडिया आया है। हम लोग प्राइवेट प्रेक्टिस क्यों न शुरू करें?"

जब्बरसिंह हँस कर बोला, "दिमाग खराब हुआ है? ढोर-डंगरो के डाक्टर और प्राइवेट प्रेक्टिस!"

"अरे, मेरी बात तो सुनो।" मैंने कहा, "ऐसा करें कि हम एक कुत्ता चिकित्सा-केंद्र खोले और बड़े-बडे लोगो के पालतू कुत्तो का इलाज करें। किसी शानदार कालोनी मे क्लीनिक खोलें और जम कर विज्ञापन करें। साल भर मे किस्मत न पलट जाये तो कहना। तुम देखना जब्बर, साल भर बाद हमारे पास अपने बंगले होंगे, अपनी कारें होंगी, और हम शहर के तमाम बड़े लोगों के चहेते होंगे।"

जब्बरसिंह ने कहा, "हाँ यार, आइडिया बुरा नही है।" बस! इसके बाद दूसरी बातें करने लगा। मैं कुछ देर मन के लड्डू और फोड़ना चाहता था, लेकिन जब्बरसिंह ऐसा उड़ा कि बस! एक बार तो उसने मुझे डाँट भी दिया, "क्या बेकार बात करते हो, कही ऐसा भी हो सकता है!" मैं चुप रह गया। तब मुझे क्या मालूम था कि सफल या होनहार सफल लोगों का यह विशिष्ट गुण होता है—मतलब की बात को गहरे ताल की तरह गड़प कर जायेंगे और मजाल है जो एक भी लहर चेहरे पर उठ जाये!

अब मैं तो अपनी योजना को पिछली सब योजनाओं की तरह भूल गया और जब्बरसिंह ने कुछ ही दिन बाद तीन महीने की लंबी छुट्टी ले ली। मुझसे कहा कि माल कुएँ वाले मकान पर एक मंजिल और चढ़वानी है, लेकिन किया यह कि वह मकान रेहन रख कर ग्रेटर कैलाश में एक दुकान किराये पर ले ली। क्लीनिक बनाया और बाहर साइन-

बोर्ड लगाया—डाक्टर जब्बर, कुत्ता-विशेषज्ञ। तीन महीने बाद उसने नौकरी छोड़ दी और मेरे पास आया। दुपहिया स्कूटर की टी-टी बजा कर दरवाजा खुलवाया और मिठाई का दो किलो वाला डिब्बा मेरी बेटी को पकड़ा कर मेरे पाँव पकड़ लिये। सचमुच पकड़ लिये। और बोला, "गुरु, आशीर्वाद दो। बच्चा कामयाब हो गया। तुमने मेरी जिन्दगी बना दी।"

मैं हैरान! वह पुराना जब्बरसिंह नही था। एकदम नया शानदार सूट, चमाचम जूते, भड़कीली टाई। बाल रूखे मगर चेहरे पर चिकनाई। कहने लगा कि कुत्ता-चिकित्सा-केंद्र खुल गया है और बढ़िया चलने लगा है। लखपती-करोड़पती लोगो और मन्त्रियों तथा अफसरों के कुत्ते इलाज के लिए आते हैं। बस, शुरू में दो महीने अपने पल्ले से खर्चा करना पड़ा, "लेकिन गुरु, इस महीने सब खर्चा निकाल कर सात हजार बच गया। दो हजार ब्लैक देकर छह हजार में यह स्कूटर ले लिया है, लेकिन इससे काम चलेगा नहीं, गाड़ी ही लेनी पड़ेगी। आखिर इतने बड़े-बड़े लोगों के यहाँ विज़िट करने जाना पड़ता है। क्लीनिक मे एक नर्स और एक कंपाउंडर रख लिया है। पब्लिसिटी पर पूरे पाँच हजार खर्च किये हैं। तुम तो हिन्दी का अखबार पढ़ते हो, पर मैं इतना बेवकूफ नही कि हिन्दी मे विज्ञापन देकर पैसा जाया करूँ। मेरा मार्केट तो अंग्रेजी वालों में है। गुरु, कभी आकर देखो, क्या फर्राटेदार पटाखा चीजें आती है मेरे पास। येल्लंबी जहाज-सी विदेशी कारें आती हैं और उनमें से ऐसी-ऐसी खूबसूरत परियाँ उतरती हैं कि तुम्हें क्या बताऊँ! पिल्ले को गोद में लिये सहलाती हुई आयेंगी। क्या हुआ है जी? इसे जुकाम हो गया लगता है! दवा लेकर दो मिनट में वापस जा सकती है, लेकिन घंटे भर बैठेंगी। अपना नाम, पता, खानदान, शिक्षा, शौक और दुनिया भर से अपने कांटेक्ट्स बतायेंगी और जाते समय मुझे अपने घर इनवाइट करेंगी। दवा का दाम मे कहूँगा पैंतीस, तो पचास का नोट मेरी टेबल पर रख कर ओ० के०, बाय-बाय, सी यू! कभी देखो आकर।"

मैं भौचक-सा डाक्टर जब्बर, कुत्ता-विशेषज्ञ की बातें सुनता रहा। तब उसने फिर कहा "खैर, कुछ भी हो गुरु, मेरी जिन्दगी बनाने का सारा

श्रेय तुमको जाता है। उस दिन शायद तुम्हारी जिम्या पर मेरे लिए लक्ष्मी आ बैठी थी।"

मुझे बुरा तो बहुत लगा कि जब्बरसिंह ने मेरी योजना हड़प ली और मुझे पार्टनर बनाना तो दूर, हवा तक नहीं लगने दी, जैसे मैं इसका दोस्त नहीं दुश्मन था। लेकिन मैंने अपने मन को समझा लिया—डाक्टरी पेशा सेवा के लिए होता है, पैसा कमाने के लिए नहीं। और मैं देहात में अपना काम और ज्यादा मन लगा कर करने लगा। पशु-चिकित्सा संबंधी नयी से नयी पुस्तकें और पत्रिकाएँ पढ़ता और उस जानकारी का प्रयोग भी करता। इसका असर भी पड़ा। देहात के लोग मेरा पहले से भी ज्यादा आदर करने लगे। उधर जब्बरसिंह सचमुच दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा। चार-पाँच साल में ही उसने डिफेंस कालोनी में अपनी कोठी खड़ी कर ली, कार ले ली, लाल कुएँ वाले मकान पर लिया हुआ कर्जा उतार कर सचमुच उस पर दूसरी मंजिल चढ़वा दी और उसमें पाँच नये किरायेदार बसा दिये। लेकिन दिमाग का यह हाल हो गया कि मामूली से मामूली बीमारियों के बारे में भी सलाह लेने मेरे पास दौड़ा आता। कभी-कभी मुझे अपने साथ भी ले जाता। मैं दोस्ती के नाम पर उसकी यह मुफ्त सेवा कर दिया करता।

एक दिन जब मैं अपने अस्पताल के पास वाले गाँव में एक केस देखने गया हुआ था, यह अपनी कार में भागा-भागा आया और अस्पताल में मुझे न पाकर सीधा उस गाँव में चला आया। वहाँ एक किसान की भैंस ब्या रही थी। और पाड़ा आधा निकल कर अटक गया था। घबराये हुए किसान से यह खबर सुन कर मैं तुरंत चला आया था। उस दिन मेरा सहायक छुट्टी पर था और मैं अकेला होने के कारण कुछ कठिनाई अनुभव कर रहा था। किसी ने आकर मुझे बताया कि जब्बर आया है और बाहर कार में बैठा मुझे बुला रहा है, तो मैंने कहलाया कि थोड़ी देर के लिए वह यहीं आ जाये और मेरी जरा मदद करे। लेकिन जब्बर कार से नहीं उतरा। कह दिया कि अब वह अस्पताल का नौकर नहीं है,

और अचरज तथा हिकारत से अपनी ओर देखते गाँव वालो की उपेक्षा करता हुआ कार में बैठा पाइप मे तम्बाकू पीता रहा।

खैर, पाड़ा सही-सलामत बाहर निकल आया। किसान की औरत ने मुझे अशीर्वाद देते समय जब्बर को खूब गालियाँ दी जो डाक्टर होकर भी ऐसी मुसीबत में उसकी भैंस का हाल पूछने नहीं आया था। जब्बर का यह रवैया मुझे भी बुरा लगा था।

लेकिन मुझे उस किसान के घर से निकलते देख जब्बरसिंह फौरन कार से निकला और तपाक मे बोला, 'फौरन चलो गुरु, आज एक केस तुमको देखना है।"

"मैं नही चल सकूँगा जब्बर, मेरे पास समय नहीं है।" मैंने अपनी नाखुशी जाहिर की, लेकिन ज्यादा कठोर न लगूँ, इसलिए कहा, "और मैं कुत्तों के बारे मे ज्यादा जानता भी नही हूँ।"

"कुत्ते ही साले अपने बारे में क्या जानते हैं।" जब्बरसिंह ने कहा, "पर तुमको चलना जरूर है।" फिर उसने मुझे टुकड़ा फेंका, "आज मैं उन लोगो से तै कर आया हूँ, स्पेशलिस्ट फोकट मे नहीं मिलते, सौ रुपया फीस देनी होगी। उन्होंने कहा है, देंगे।"

इतना गुस्सा मुझे उस पर नही था कि सौ रुपया फीस की बात सुन कर भी उसे दुतकार देता, इसलिए चुपचाप उसकी कार मे बैठ गया। वह मुझे दिल्ली लाया और पहले सीधा अपने घर ले गया। अपने कपड़े निकाल कर देता हुआ बोला, "नहा-धोकर इन्हें पहन लो, तुम्हारे कपड़े मैले हो रहे हैं।" मैंने विरोध नहीं किया, क्योंकि गाँव में केस करते समय कपडे वाकई मैले हो गये थे और गरमी के मारे पसीने से सारा शरीर चिपचिपा रहा था।

जब्बरसिंह ने खुद मेरे जूतों पर पालिश की और अपने हाथों से मेरे गले मे टाई बाँधी। इस तरह सजा-मजू कर वह मुझे सफदरजंग एन्क्लेव की एक बडी कोठी मे ले गया। वहाँ पहुँच कर मेरी जो आवभगत शुरू हुई कि मै दंग रह गया। डाक्टर जब्बर से ज्यादा वे लोग डाक्टर भारद्वाज, यानी मेरी तरफ मुखातिब थे। उस कोठी के मालिक सेठ ने पहले तो हमें अपने एयरकंडीशंड ड्राइंगरूम में ले जाकर बिठाया, फिर मुझसे

पूछा कि मैं क्या पियूंगा। चाय, काफी, कोकाकोला और फलों के रस से लेकर ठंडी बीयर तक मैं कुछ भी पी सकता था। मैंने केवल पाइन-एपल जूस लिया। हमारे आने की सूचना पाकर सेठानी भी अंदर से निकल आयी और कहने लगी कि डाक्टर साहब, हमने आपको बहुत कष्ट दिया है, पर यह हमारे बेटे की जिंदगी का सवाल है।

मैं समझा, इसका बेटा कोई कुत्ता पाले हुए होगा और उसे इतना प्यार करता होगा कि उसके बीमार हो जाने पर खाना-पीना छोड बैठा होगा। लेकिन अंदर जाने पर मैंने देखा कि डनलप के गद्दों वाले डबल बेड पर बिछी झक सफेद चादर पर एक अलसेशियन बैठा है। सेठानी ने फिर मुझसे कहा, "देखिए डाक्टर साहब, हमारे बेटे को जाने क्या हो गया है। कल से इसने कुछ नहीं खाया। चुपचाप बैठा रहता है। बात का जवाब भी नहीं देता।"

हत्तेरे की! यह है इसका बेटा! मैंने मन ही मन कहा।

तभी जब्बरसिंह ने मेरी प्रशंसा शुरू कर दी। कहने लगा, "अब आप एकदम निश्चित हो जाइए। डाक्टर भारद्वाज जैसा स्पेशलिस्ट पूरे इंडिया में आपको नहीं मिलेगा। इन्होंने तो ऐसे-ऐसे केस ठीक कर दिये है कि आपको क्या बताऊँ।" और उसने मुझे इंगलैंड, अमरीका, रूस, जर्मनी, फ्रांस—जाने कहाँ-कहाँ शिक्षा और शोध करके आया हुआ विशेषज्ञ बताया। यह भी बताया कि इतना बड़ा और माना हुआ विशेषज्ञ होने पर भी मैं गांधी जी का पक्का चेला हूँ, इसलिए हर देश की सरकार का निमंत्रण ठुकरा कर अपने देश की सेवा कर रहा हूँ, और सेवा भी कैसी? एकदम गुमनाम! क्या मजाल कि आप टेलीफोन डाइरेक्टरी में भी इनका नाम पा जायें। सीक्रेट फोन है इनके पास, और उसका नंबर इस देश में केवल तीन व्यक्ति जानते हैं—राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और डाक्टर जब्बर। चौथे आदमी को तो पता भी नहीं चल सकता कि डाक्टर भारद्वाज इस समय भारत में हैं कि कहीं विदेश गये हुए हैं।"

यह सुन कर मैं तो बेहोश होने लगा, पर जब्बरसिंह बोलता गया, "ये पेशेंट को एक नजर देख लें, बस, काफी है। अब आप समझ

लीजिए कि आपका बेटा ठीक हो गया।"

सेठ-सेठानी मेरे प्रति ऐसे श्रद्धावनत हो गये जैसे अभी मेरे पैरों पर लोट जायेंगे। तब तक मैं समझ चुका था कि डाक्टर जब्बर के इस ड्रामे मे मेरी क्या भूमिका है। मैंने कुत्ते को देखा। उसे कोई बीमारी नही थी। लगता था, ज्यादा खा गया है और हाजमा दुरुस्त करने के लिए उपवास कर रहा है, जैसा कि कई कुत्ते किया करते हैं। सेठ-सेठानी का मन रखने लिए मैंने कह दिया, "आप चिंता न करें, सब ठीक हो जायेगा। मैं डाक्टर जब्बर को इलाज बता दूंगा।"

चलते समय जब्बरसिंह ने कहा, "अभी तो मैं डाक्टर भारद्वाज को पहुँचाने जाऊँगा, आधे घंटे बाद आप किसी को भेज कर दवा मँगा लें। और हाँ, भूलकर भी कभी किसी से इस बात का जिक्र न करें कि डाक्टर भारद्वाज यहाँ आये थे, वर्ना तमाम लोग इन्हें घेर कर परेशान कर डालेंगे। राष्ट्रपतिजी भी किसी को नही बताते कि ये उनके कुत्तों का इलाज करते हैं।"

बाहर निकल कर मैंने जब्बरसिंह से बहुत गुस्से में कहा, "यह क्या बेहूदगी है जब्बर ? तुम्हें इतना झूठ बोलते शर्म नही आती ? और तुम बोलो तो बोलो, मुझे क्यों बीच मे घसीटते हो ?"

"इसलिए कि तुम मेरे मित्र हो और तुम्हें पैसों की जरूरत है।" यह कहकर जब्बरसिंह ने सौ रुपये का नोट निकाल कर मेरी ओर बढ़ा दिया, "मेरे खयाल मे दस मिनट के नाटक का सौ रुपया बुरा नही है।"

"यह रुपया तुम अपने पास ही रक्खो। मैं तुम्हारी तरह झूठा और मक्कार नही हूँ। मैंने कुत्ते के लिए क्या किया है जो यह रुपया ले लू।

"देखो गुरु, मैं तुमको यहाँ कुत्ते के इलाज के लिए नही लाया था मुझे भी मालूम था कि उसे कुछ नही हुआ है, पर इन बेवकूफो का इलाज करना जरूरी था। जो अपने कुत्ते के लिए जितना ज्यादा चिंतित होता है, उतना ही ज्यादा पैसा उस पर खर्च कर सकता है, और ज्यादा पैसा ये मुझे नही, मुझसे बड़े किसी स्पेशलिस्ट को ही दे सकते थे, इसलिए मैं तुमको लाया था।"

"पर यह कितनी गलत बात है जब्बर !"

"क्या गलत बात है इसमें ? ये साले गरीबों के बेटों का खून पीकर कुत्तों को अपने बेटों की तरह पालते हैं, इसमें कोई गलत बात नहीं है ? लाखों-करोड़ों लोग भूख से मर जायें और इनके कुत्ते ज्यादा खाने से बीमार हों, इसमें कोई गलत बात नहीं है ? ये सारी जनता को लूट-लूट कर और ज्यादा लूटने वाले बनते जायें, तब कोई गलत बात नहीं ? और जब्बर इनकी बेवकूफी से चार पैसे ज्यादा कमा ले तो गलत बात हो गयी ?"

मुझे लगा, जब्बरसिंह किसी प्रगतिशील कहानी का संवाद बोल रहा है। मैंने अपना तेवर बरकरार रखते हुए कहा, "तुम कमाओ, पर मुझे इस पाप का भागी मत बनाओ। और मेरी मानो तो तुम भी यह कुत्तागीरी छोड़ कर कोई आदमियों वाला काम करो।"

"ये धार्मिक फिल्मों के डायलाग रहने दो।" जब्बरसिंह ने कहा, "अव्वल तो मैं जानवरों का डाक्टर हूँ इसलिए आदमियों का इलाज कर नहीं सकता, दूसरे, जिस धंधे में इतनी अनाप-शनाप आमदनी हो उसे मैं छोड़ना चाहता भी नहीं।"

"पर यह तो याद करो कि तुम क्या थे और क्या हो गये हो ? तुम्हें याद है, जब तुम मेरे साथ पढ़ते थे, तुम्हें सदाचार और शिष्टाचार के मैडल मिला करते थे ! नौकरी में आने के बाद भी तुमने अस्पताल में फैले भ्रष्टाचार का विरोध किया था। तुमको अपने इस पतन पर शर्म नहीं आती ?"

"नहीं आती।" जब्बरसिंह ने साफ कहा, "अस्पताल में फैले भ्रष्टाचार का विरोध मैंने किया था और मुझ पर ही भ्रष्टाचार के आरोप लगे। वहाँ मैंने एक पैसा नहीं खाया, फिर भी लोग यही कहते थे कि खाता है। लेकिन यहाँ मैं दस पैसे की दवा देकर दस हजार भी वसूल कर लूँ तो कोई साला मुझे बेईमान नहीं कह सकता। उल्टे, इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ती है।"

"फिर भी यह ठीक नहीं है जब्बर !" मैंने महसूस किया, मेरे तर्क चुक गये हैं।

"कम से कम तुम यह बात मत कहो गुरु !" जब्बरसिंह व्यग्यपूर्वक

बोला, "यह आइडिया तुम्हारा ही था और तुम्हारे पास यह धंधा शुरू करने लायक पैसा होता तो तुम जरूर यही कर रहे होते। कह दो कि गलत कहता हूँ।"

मै हिल उठा। ठीक ही तो कहता है जब्बरसिंह! आत्मविश्लेपण करने पर मैंने पाया कि मैं जो बहुत ईमानदार बन रहा हूँ सो इसलिए नही कि ईमानदार हूँ, बल्कि इसलिए कि जब्बर से ईर्ष्या करता हूँ और समझ रहा हूँ कि यह मुझे नकली विशेषज्ञ बना कर अपने लिए इस्तेमाल कर रहा है। मुझे सौ रुपये देकर टरका रहा है, लेकिन इसने मेरे नाम पर सेठ से हजार-पाँच सौ जरूर ऐंठे होगें।

आत्मविश्लेपण के उस क्षण में मैंने यह भी समझ लिया कि जब्बरसिंह ने विशेषज्ञ बनाने के लिए मुझे ही क्यों चुना है। इसलिए कि मैं इसका भांडा नहीं फोड़ सकता, जबकि कोई दूसरा इस ब्लैकमेलिंग में इसका साथ देने के लिए इसको भी ब्लैकमेल कर सकता है। यह जानता है कि मै इसे ब्लैकमेल करने पर अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस कबूल करूँगा और अपनी नौकरी से हाथ धो बैठूंगा। मैंने खुद को जब्बरसिंह के शिकंजे में जकडा हुआ महसूस किया और उस शिकजे को तोड़ने की तरकीब सोचने लगा।

मेरा कल्पनाशील योजनाधर्मी मस्तिष्क सक्रिय हो उठा और मैंने सोचा—अच्छा है, यह गधा मुझे इसी तरह बडा विशेषज्ञ बनाकर अपने साथ ले जाता रहे। थोड़े दिनो बाद मैं सचमुच एक बड़े विशेषज्ञ के रूप मे प्रतिष्ठित हो जाऊँगा और बड़े लोगों से मेरे संबंध भी बन जायेंगे। और तब मैं एक दिन इसको बताये बिना अपना क्लीनिक खोल लूगा। लागत की समस्या को मै इस तरह सुलझाऊँगा कि इसके साथ आने पर मिलने वाली पाई-पाई जमा करता जाऊँगा। समझ लूंगा, यह रुपया मुझे मिल ही नहीं रहा है। और मैंने जब्बरसिंह से सौ रुपया लेना स्वीकार करने के साथ ही अगले दिन उस रुपये को बैंक में जमा करने का भी निश्चय कर लिया।

इसके बाद मैं हल्का हो गया और मैंने ऐसे दिखाया जैसे ईमानदारी की बातें मैंने महज मजाक में की थी। जब्बरसिंह मेरे इस आकस्मिक

परिवर्तन पर चकित हुआ, लेकिन कुछ बोला नही, हँस पड़ा। मैं भी हँस पड़ा। और हम दोनों काफी देर तक हँसते रहे, जैसे हमने दुनिया के साथ या दुनिया ने हमारे साथ कोई बढ़िया मजाक कर डाला हो।

तब से मैं अपनी गुप्त योजना के लिए खुद ही जब्बरसिंह के साथ विशेपज्ञ बन कर जाने के लिए लालायित रहने लगा। मगर दो साल बाद मैंने पाया कि मैं एक पैसा भी नहीं बचा सका हूँ। साल में औसतन पाँच-छह सौ रुपया इस तरह मुझे मिलता था, और जब मिलता था तब कोई न कोई जरूरत सिर पर खड़ी होती थी जिससे वह पैसा भविष्य के लिए बचने के बजाय वर्तमान पर खर्च हो जाया करता था। और तब मुझे आत्मज्ञान हुआ कि लागत के अभाव मे मेरी यह नयी योजना भी योजना ही रह गयी है।

जब यह आत्मज्ञान हुआ तो मुझे फिर से अपनी ईमानदारी की चिंता सताने लगी। मुझे लगने लगा कि जब्बरसिंह मुझे जबरदस्ती भ्रष्ट कर रहा है। साल-भर में पाँच-छह सौ रुपये क्या होते हैं जिनके लिए मैं अपना ईमान बेचता फिरता हूँ? आखिर पहले भी तो अपनी नौकरी से गुजारा करता था! यह अतिरिक्त आमदनी नहीं होगी तो क्या मैं भूखो मर जाऊँगा? उल्टे, इस जरा-सी आमदनी के लालच में यह हो सकता है कि नौकरी चली जाये और धोखाधड़ी के लिए मुझे जेल हो जाये। किसी भी दिन जब्बरसिंह के नाटक की असलियत किसी पर खुल गयी तो वह मुझे सीधा जेल भिजवायेगा। ये बड़े लोग कुछ भी कर सकते हैं। पुलिस और अदालतें तो इन्हीं के लिए होती है, मेरी कौन सुनेगा? जब्बर तो पैसे वाला है, कुछ दे-दिलाकर छूट जायेगा, मैं ही मारा जाऊँगा।

इसलिए उस दिन खिचड़ी खाते समय मैंने यह निश्चय कर लिया था कि आज जब्बरसिंह के साथ जाने से साफ मना कर दूगा और हमेशा के लिए हाथ जोड़ लूंगा कि बाबा, मुझे माफ करो। मुझे मेरी नौकरी करने दो और बीबी बच्चों को पालने दो।

लेकिन जब्बर तो जब्बर ठहरा! उसने कहा, "सुनो गुरु, आज तुमको पूरे पाँच सौ दिलवाऊँगा। और आज तुम्हें किसी कुत्ते को नहीं,

एक गाय को देखने चलना है।"

यह सुन कर मैं ही नही, मेरे बच्चे तक चौंक गये। मेरी छोटी लड़की बोल उठी, "पाँच सौ ? पापा को पाँच सौ रुपये मिलेंगे अंकलजी ?"

मुझे अपनी बेटी का यह नदीदापन अच्छा नही लगा, लेकिन मैंने देखा, पत्नी और दूसरे बच्चों की आँखो में भी वही नदीदापन झलक रहा है। भीतर से कटते हुए मैंने ऊपरी उपेक्षा के साथ कहा, "तो क्या तुम अब गाय-विशेषज्ञ हो गये हो ?"

"नहीं यार, हूँ तो वही कुत्तो का डाक्टर, लेकिन कल मुझसे एक गाय का इलाज करने को कहा गया है।"

"लेकिन ऐसी कौन-सी गाय है भाई, जिसको सिर्फ देखने की फीस पाँच सौ रुपये है ?"

"तुमने महारानी राज्यलक्ष्मी का नाम सुना है ?"

"अरे, क्या वही जिनके पास देशी-विदेशी हर नस्ल के कुत्ते है ?"

"हाँ। उनके कुत्तो का इलाज पिछले दिनों मैं करता रहा हूँ। कल पता चला कि उनके पास एक गाय भी है और गाय बीमार है।"

"क्या बीमारी है उसे ?"

"यही तो नही मालूम। देशी-विदेशी बहुत-से डाक्टर उसका इलाज कर चुके है, लेकिन कोई कामयाब नही हुआ। मैंने देखा, पर मेरी समझ में उसका रोग नही आया। तुम चलकर देख लो। अगर रोग तुम्हारी समझ में आ जाये तो उसका इलाज मैं अपने हाथ मे ले लू। लेकिन सुनो, महारानी राज्यलक्ष्मी तुम्हें जानती हैं क्या ?"

"मुझे ? नही तो। क्यों ?"

"मैंने गाय-विशेषज्ञ के रूप मे तुम्हारा नाम लिया तो कहने लगी—यह नाम कुछ सुना हुआ-सा लगता है। मैंने कहा—कैसे नही सुना होगा। यह जरूर है कि डाक्टर भारद्वाज तक राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और डाक्टर जब्बर के सिवा चौथे व्यक्ति की पहुँच नही है, लेकिन उनकी कीर्ति तो कही भी पहुँच सकती है।"

"और तुमने यह भी कहा होगा कि वे तो यहाँ आना पसद नही करेंगे, पर मैं उन्हें किसी तरह ले आऊँगा।" मैंने हँसकर कहा।

परिवर्तन पर चकित हुआ, लेकिन कुछ बोला नहीं, हँस पड़ा। मैं भी हँस पड़ा। और हम दोनों काफी देर तक हँसते रहे, जैसे हमने दुनिया के साथ या दुनिया ने हमारे साथ कोई बढ़िया मजाक कर डाला हो।

तब से मैं अपनी गुप्त योजना के लिए खुद ही जब्बरसिंह के साथ विशेषज्ञ बन कर जाने के लिए लालायित रहने लगा। मगर दो साल बाद मैंने पाया कि मैं एक पैसा भी नहीं बचा सका हूँ। साल में औसतन पाँच-छह सौ रुपया इस तरह मुझे मिलता था, और जब मिलता था तब कोई न कोई जरूरत सिर पर खड़ी होती थी जिससे वह पैसा भविष्य के लिए बचने के बजाय वर्तमान पर खर्च हो जाया करता था। और तब मुझे आत्मज्ञान हुआ कि लागत के अभाव में मेरी यह नयी योजना भी योजना ही रह गयी है।

जब यह आत्मज्ञान हुआ तो मुझे फिर से अपनी ईमानदारी की चिंता सताने लगी। मुझे लगने लगा कि जब्बरसिंह मुझे जबरदस्ती भ्रष्ट कर रहा है। साल-भर में पाँच-छह सौ रुपये क्या होते हैं जिनके लिए मैं अपना ईमान बेचता फिरता हूँ? आखिर पहले भी तो अपनी नौकरी से गुजारा करता था! यह अतिरिक्त आमदनी नहीं होगी तो क्या मैं भूखों मर जाऊँगा? उल्टे, इस जरा-सी आमदनी के लालच में यह हो सकता है कि नौकरी चली जाये और धोखाधड़ी के लिए मुझे जेल हो जाये। किसी भी दिन जब्बरसिंह के नाटक की असलियत किसी पर खुल गयी तो वह मुझे सीधा जेल भिजवायेगा। ये बड़े लोग कुछ भी कर सकते हैं। पुलिस और अदालतें तो इन्हीं के लिए होती हैं, मेरी कौन सुनेगा? जब्बर तो पैसे वाला है, कुछ दे-दिलाकर छूट जायेगा, मैं ही मारा जाऊँगा।

इसलिए उस दिन खिचड़ी खाते समय मैंने यह निश्चय कर लिया था कि आज जब्बरसिंह के साथ जाने से साफ मना कर दूँगा और हमेशा के लिए हाथ जोड़ लूँगा कि बाबा, मुझे माफ करो। मुझे मेरी नौकरी करने दो और बीबी बच्चों को पालने दो।

लेकिन जब्बर तो जब्बर ठहरा! उसने कहा, "सुनो गुरु, आज तुमको पूरे पाँच सौ दिलवाऊँगा। और आज तुम्हें किसी कुत्ते को नहीं,

'एक गाय को देखने चलना है।"

यह सुन कर मैं ही नही, मेरे बच्चे तक चौक गये। मेरी छोटी लड़की बोल उठी, "पाँच सौ ? पापा को पाँच सौ रुपये मिलेंगे अंकलजी ?"

मुझे अपनी बेटी का यह नदीदापन अच्छा नही लगा, लेकिन मैंने देखा, पत्नी और दूसरे बच्चो की आँखो में भी वही नदीदापन झलक रहा है। भीतर से कटते हुए मैंने ऊपरी उपेक्षा के साथ कहा, "तो क्या तुम अब गाय-विशेषज्ञ हो गये हो ?"

"नही यार, हूँ तो वही कुत्तों का डाक्टर, लेकिन कल मुझसे एक गाय का इलाज करने को कहा गया है।"

"लेकिन ऐसी कौन-सी गाय है भाई, जिसको सिर्फ देखने की फीस पाँच सौ रुपये है ?"

"तुमने महारानी राज्यलक्ष्मी का नाम सुना है ?"

"अरे, क्या वही जिनके पास देशी-विदेशी हर नस्ल के कुत्ते है ?"

"हाँ। उनके कुत्तो का इलाज पिछले दिनों मैं करता रहा हूँ। कल पता चला कि उनके पास एक गाय भी है और गाय बीमार है।"

"क्या बीमारी है उसे ?"

"यही तो नही मालूम। देशी-विदेशी बहुत-से डाक्टर उसका इलाज कर चुके हैं, लेकिन कोई कामयाब नही हुआ। मैंने देखा, पर मेरी समझ में उसका रोग नही आया। तुम चलकर देख लो। अगर रोग तुम्हारी समझ में आ जाये तो उसका इलाज मैं अपने हाथ में ले लू। लेकिन सुनो, महारानी राज्यलक्ष्मी तुम्हें जानती हैं क्या ?"

"मुझे ? नही तो। क्यों ?"

"मैंने गाय-विशेषज्ञ के रूप में तुम्हारा नाम लिया तो कहने लगी—यह नाम कुछ सुना हुआ-सा लगता है। मैंने कहा—कैसे नही सुना होगा। यह जरूर है कि डाक्टर भारद्वाज तक राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और डाक्टर जब्बर के सिवा चौथे व्यक्ति की पहुँच नही है, लेकिन उनकी कीर्ति तो कही भी पहुँच सकती है।"

"और तुमने यह भी कहा होगा कि वे तो यहाँ आना पसद नही करेंगे, पर मैं उन्हें किसी तरह ले आऊँगा।" मैंने हँसकर कहा।

"और क्या कहता !" जब्बरसिंह भी हँस पड़ा ।

उन दिनों पाँच सौ रुपये हमारे परिवार के लिए बहुत बड़ी चीज थे। मेरे मन में थोड़ी देर नैतिकता और भ्रष्टाचार का द्वंद्व चला, मगर जीत पाँच सौ रुपयों की ही हुई। अपने परिवार की आँखें देखकर मुझे लगा कि सब लोग मुझसे तुरत जब्बरसिंह के साथ जाने का प्रबल अनुरोध कर रहे हैं। मुझे भी याद आ गया कि स्कूलों में नया सेशन शुरू होने वाला है, बच्चों की दो-दो महीने की फीसें जानी है, नयी कक्षाओं की किताबें-कापियाँ आनी हैं और सबसे छोटे लड़के का नया दाखिला कराना । और मैं व्यवस्था को मन ही मन कोसता, कि वही मनुष्य को भ्रष्ट करने के लिए विवश करती है, जब्बरसिंह के साथ जाने को तैयार हो गया ।

जब्बरसिंह हमेशा की तरह पहले मुझे अपने घर ले गया। गरमी के दिनों में भी उसने मुझसे अपना टेरीकाट का सूट पहन लेने का आग्रह किया, क्योंकि हम एक बहुत बड़ी चीज से मिलने जा रहे थे। हम दोनों कद-काठी में लगभग एक जैसे थे, इसलिए जब्बरसिंह के कपड़े मुझे पूरे आ जाते थे, लेकिन उस दिन उसकी पैंट पहनते समय मुझे मालूम हुआ कि इस बीच जब्बरसिंह की तोंद काफी बढ़ गयी है, या मेरा पेट काफी अंदर धँस गया है । फिर भी, जिस प्रकार नाटक के अभिनेता किसी भी तरह की पोशाक अपने शरीर पर अटका लेते हैं, उसी प्रकार मैंने जब्बरसिंह की पैंट को अपने पिचके पेट पर पेटी से कसकर बाँध लिया और ऊपर से उसका कोट अटका लिया ।

बाहर निकले तो जब्बरसिंह के कुत्ता-चिकित्सा केंद्र के सामने उसकी कार के अलावा दो अन्य कारें खड़ी थीं—एक रक्तवर्णी लंबी इम्पाला और दूसरी साधारण काली कार जिसमें दो अफसरनुमा लोग बैठे हुए थे। हमें देखते ही वे बाहर निकल आये और अत्यधिक आदरपूर्वक उन्होंने हमसे इम्पाला में बैठने को कहा। हमारे बैठते ही इम्पाला चल पड़ी। पीछे-पीछे वह दूसरी कार भी ।

मैं इतनी बड़ी गाड़ी में पहली बार बैठा था। लगता था, वह जमीन पर नहीं चल रही है, हवा में उड़ रही है, और हम उसमें बैठे हुए

उत्तरोत्तर ऊपर ही ऊपर उठते जा रहे है ।

वह भीमाकार चट्टानी पत्थरों वाली भीतों से बना कोई पुराना महल था, जो एक देहाती इलाके से गुजरते-गुजरते मानो अचानक हमारे सामने प्रकट हो गया था । उसके भीतर जाते समय खुले हुए विशाल फाटक का एक तरफ का पट मुझे दिखायी दिया, जिस पर पीतल की एक पालिश की हुई चमकीली प्लेट जड़ी हुई थी और उस प्लेट पर एक गाय का चिह्न अंकित था । नीचे कुछ लिखा भी था, लेकिन तब तक हम आगे निकल आये थे ।

महल में पहुँचते ही पता चला, महारानी राज्यलक्ष्मी चाय पर हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही हैं । एक बड़े हॉल और दो बेतरह सजे हुए कमरों से होकर हमें जिस आलीशान कमरे में ले जाया गया, उसमें पहुँच कर मुझे लगा कि वैभव और सत्ता का साक्षात् प्रदर्शन करती यहाँ की सब चीजें मानो अवास्तविक है और मानो हम भी यहाँ आकर अवास्तविक लग रहे हैं । उस चकाचौंध में मुझे केवल यही दिखायी दिया कि क्रीम कलर के मखमली कालीन पर बड़ी-बड़ी सोफा-कुर्सियाँ रखी हुई है और एक तरफ सफेद मेजपोश से ढकी डाइनिंग टेबल पर सुन्दर गुलदस्तों के साथ चाय का सामान सजा हुआ है ।

तभी महारानी राज्यलक्ष्मी भीतर के दरवाजे से प्रकट हुईं । दो सुन्दर सेविकाएँ उनके साथ थी । राज्यलक्ष्मी की पोशाक एकदम सफेद और बेहद महीन कपड़े की थी और उसमे असंख्य झोल-झालरों से युक्त इतना अधिक कपड़ा लगा था कि पोशाक उनके पीछे काफी दूर तक फर्श पर घिसटती चलती थी और उस स्तब्धता मे मखमली कालीन पर एक महीन सरसराहट पैदा करती थी । वे एक ढली हुई उम्र की औरत थीं, फिर भी अत्यधिक सुन्दर तथा आकर्षक लग रही थी । देखते ही उन्होंने हमें अपनी मुस्कान से कृतार्थ किया और बोली, "आइए, पहले चाय ले लें ।"

चाय के साथ खाने की जो विभिन्न और प्रभूत वस्तुएँ वहाँ उपस्थित थी, उन्हें देख कर मुझे अपनी मूंग की दाल की खिचड़ी याद आ गयी, लेकिन उसे खाकर आना ही ठीक रहा क्योंकि खाने की उन चीजों को न

तो राज्यलक्ष्मी ने छुआ, न उनके प्रिय डाक्टर जब्बर ने। मैंने भी केवल उस चाय से संतोष किया जो उन दोनों की देखा-देखी बहुत कम दूध डालने के कारण मुझे जरा भी अच्छी नहीं लग रही थी।

चाय पीते समय गाय की कोई बात नहीं हुई। न राज्यलक्ष्मी ने मेरे बारे में कुछ पूछा। बस, उनका डाक्टर जब्बर उनके प्रत्येक कुत्ते का नाम ले-लेकर उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछता रहा और मुझे लगा, राज्यलक्ष्मी को अपने कुत्तों के सिवा दुनिया में मानो किसी की भी चिन्ता नहीं है।

चाय पीकर वे उठी और बोली, "आइए।"

हम दोनो तुरन्त उठ कर उनके पीछे चल दिये। उनके पीछे चलते हुए हम न जाने कितने दरवाजे और दालान और कमरे पार कर गये। सामने दरवाजे बंद होते थे, लेकिन ज्यों ही राज्यलक्ष्मी किसी दरवाजे के पास पहुँचती, वह अपने आप खुल जाता। अन्त मे जो दरवाजा खुला, उसने हमे एक खुली जगह में पहुँचा दिया। मुझे लगा, महल के पिछवाड़े से निकल कर हम किसी देहाती इलाके मे आ गये हैं। सामने कच्ची-पक्की दीवारों और घास-फूस के छप्परो वाला एक गाँव-सा बसा हुआ था और खूब चमकीली धूप चारों ओर फैली हुई थी।

राज्यलक्ष्मी ने आँखों पर धूप का चश्मा लगाया और नाक पर रूमाल रख लिया। उनकी सुन्दर सेविकाओं ने जाने कब और कहाँ से झिलमिल झालरो वाला एक विशाल छत्र उठा लिया, जिसकी छाया केवल राज्यलक्ष्मी पर पड़ती थी और उस छाया मे धूप उनके पाँव का नाखून तक नहीं छू सकती थी। कुछ कदम चल कर वे रुक गयी और एक टूटी-पुरानी-सी झोपड़ी की ओर संकेत करके मुझसे बोली, "जाकर देख लीजिए, इसी के अन्दर है।"

जब्बरसिंह निर्भय भाव से झोंपड़ी में घुस गया। कुछ हिचकते हुए मैं भी उसके पीछे चला गया। राज्यलक्ष्मी अपनी सेविकाओ के साथ बाहर ही रह गयी। मैंने जब्बरसिंह से पूछा, "यह हम कहाँ आ गये है?"

"यह राज्यलक्ष्मी की पुरानी जागीर है।"

"इन झोंपड़ियों में कौन लोग रहते हैं?"

"उनके जानवर।"

"सबमे ?"

"हाँ।"

झोपड़ी के अन्दर सबसे पहले मेरा सामना एक तीखी दुर्गन्ध और भनभनाते मक्खी-मच्छरो से हुआ। झोपड़ी के टूटे छप्पर से आती रोशनी मे वह गाय मुझे दिखायी दी। अपने गोबर-मूत की बदबूदार गन्दगी में खडी हड्डियों की ठठरी जैसी एक मरियल गाय थी वह, जिसके सारे शरीर पर ताजे-पुराने, सूखे-रिसते जख्मों की लम्बी धारियाँ थीं, जैसे बार-बार बेरहमी से चाबुक बरसा कर उसकी खाल उधेड़ी गयी हो। मैं यह दृश्य देख कर आतंक से मूर्छित-सा होने लगा, फिर सचेत होकर भय से सिहर उठा।

"यह क्या ? इसे इस तरह पीटा क्यों गया है ?" मैने जब्बरसिंह से पूछा।

"इसे छोड़ो, पहले तुम यह देखो कि इसे हुआ क्या है।" उसने कहा।

मैंने गाय को देखा। वह बूढी नही थी, जैसी कि दूर से लगती थी। जख्मो के अलावा कोई बीमारी उसमें नजर नही आयी। उसका पेट देख कर मैंने कहा, "यार, यह भूखी है। बस, और कुछ नही हुआ है इसे। पेट भर चारा मिले, जख्मों का इलाज किया जाये और साफ-सुथरी हवादार जगह मे इसे रखा जाये तो यह हफ्ते भर में ठीक हो सकती है।"

जब्बरसिंह ने मेरी बात पर ध्यान नही दिया। वह गाय को कभी इधर से देखता, कभी उधर से। मैंने कहा, "चलो, अब क्या देख रहे हो ?" तो भिंचे हुए स्वर में मुझे डाँटता हुआ बोला, "तुम साले, कभी कुछ नही बन सकोगे। जो तुमने देखा और बताया, वह तो कोई भी गधा देख और बता सकता था। लेकिन इसका इलाज इतना आसान नही है, जितना तुम समझ रहे हो। बड़े-बड़े सैकड़ो देशी-विदेशी चिकित्सक बरसों से माथा मार रहे हैं, सो यों ही नहीं। इतना आसान होता तो करोड़ों रुपया हर साल इस पर खर्च होने पर भी क्या इसका इलाज न हो पाता।"

"करोडों रुपया ? हर साल ? यह तुम क्या कह रहे हो जब्बर !"

"ठीक कह रहा हूँ। और मुझे तो पूरा विश्वास है कि यह रोग लाइलाज है। लेकिन यह कहना अपने पेशे की बेइज्जती करना और खुद अपने पेट पर लात मारना है। पता है, महारानी राज्यलक्ष्मी ने इसके

इलाज के लिए सैकड़ों डाक्टर नियुक्त किये हुए हैं। उनमें से जो प्रमुख चिकित्सक था, वह पिछले दिनों पागल हो गया, इसलिए राज्यलक्ष्मी प्रमुख चिकित्सक के पद पर किसी नये विशेषज्ञ को नियुक्त करना चाहती हैं। मैं चाहता हूँ कि यह पद मुझे मिल जाये, और इस काम में तुम मेरी सहायता कर सकते हो। लेकिन क्या इस तरह सहायता करोगे ? दुनिया जानती है कि गाय बीमार है और सैंकड़ों लोग इसका इलाज कर रहे हैं, और हम जाकर उनसे कहते हैं कि गाय को कोई बीमारी नहीं, सिर्फ भूखी और जख्मी है, तो कोई हमारा विश्वास करेगा ? राज्यलक्ष्मी हम दोनों को पागल समझ कर पागल खाने भिजवा देगी।"

"तब क्या हम जाकर झूठ बोलें ?" मैंने घबरा कर पूछा।

"बोलना ही पड़ेगा।" जब्बरसिंह ने कहा, "मैं चाहता हूँ, जितने साल इसके इलाज में लगा रह सकूँ, लगा रहूँ। और तुम भी इसे जितनी देर तक देख सकते हो, देखो। जितनी देर लगेगी, उतना ही महत्त्व बढ़ेगा-इसकी बीमारी का और तुम्हारी विशेषज्ञता का। और सुनो, बाहर निकल कर यह मत बक देना कि तुम समझ गये हो। कहना—रोग बहुत गम्भीर है। गाय के खून-पानी और गोबर-मूत की पूरी जाँच होगी; इसकी वंशावली का अध्ययन होगा; पूरी केस-हिस्ट्री समझनी होगी; इसके खान-पान और रहन-सहन की परिस्थितियों पर विचार करना होगा; इसके वातावरण में प्रत्येक प्रकार के प्रदूषण का व्यापक और ब्यौरेवार अध्ययन करना होगा; अब तक क्या इलाज किये गये और उनके क्या परिणाम रहे, यह सब देखना होगा। समझ गये ? कहना—एक-दो सप्ताह या, दो-चार महीने का काम नहीं, इसमें बरसों लगेंगे।"

"पर तब तक तो यह मर जायेगी।" मैंने कहा।

"नहीं, यह मरेगी नहीं।" जब्बरसिंह ने जवाब दिया।

"क्यों ? अमर है ?"

"हाँ। यह कामधेनु है।"

"कामधेनु ? और यह ?" मुझे लगा, जब्बर मजाक कर रहा है, लेकिन जब उसने फिर से और पूरी गम्भीरता के साथ कहा कि यह कामधेनु ही है, तो मुझे बड़ा अचम्भा हुआ, "यही है वह पौराणिक गाय, जो सागर-

मथन से श्री, रम्भा, विष, वारुणी वगैरह के साथ निकली थी ?"

"हाँ, यह वही है।"

"पर यह तो शायद देवताओं या ऋषि-मुनियों की गाय थी ? यह यहाँ कैसे ? और इस हालत में ?"

"गाय वही है, लेकिन यह कलियुग है।" जब्बरसिंह ने कहा।

"पर मैंने सुना है, यह गाय सारी मनोकामनाएँ पूरी कर देती है ?"

"ठीक सुना है।"

"फिर इसका इलाज क्या करना है, हम यह कामना करते हैं कि यह अच्छी हो जाये।"

"तुम गधे हो। इतना आसान होता तो यह कामना क्या राज्यलक्ष्मी स्वय नहीं कर सकती थी ?"

"तब अगर यह कामनाएँ पूरी नहीं कर सकती तो कामधेनु कैसी ?"

"पहले करती थी, लेकिन अब इसके सिस्टम में कुछ गड़बड़ी हो गयी है। राज्यलक्ष्मी का सारा वैभव इसी का दिया हुआ है। तुमने देखा नहीं, फाटक पर इसी का चित्र बना हुआ था और इसी के नाम पर यह पुरानी जागीर कामधेनु स्टेट कहलाती है ?"

"अच्छा ? यह कामधेनु स्टेट है ?" मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि इसके बारे में मैंने बहुत-सी बातें सुनी थीं। सुना था कि वहाँ एक गाय का राज्य है और गोभक्त प्रतिनिधि वहाँ की शासन-व्यवस्था का सचालन करते हैं। पशु-चिकित्सक होने के नाते ऐसी विचित्र गाय को देखने की इच्छा मेरी कई बार हुई थी, लेकिन जब भी मैंने जानना चाहा कि कामधेनु स्टेट कहाँ है, मुझे लोगों ने पागल समझा और मेरी अक्ल पर तरस खाते हुए कहा—अरे कहाँ की कामधेनु, कहाँ का राज्य। सब कहने की बातें है। लोगों को बेवकूफ बनाने के तरीके है। और अब जब्बरसिंह कह रहा था कि हम कामधेनु स्टेट में हैं और सामने जो यह क्षत-विक्षत गाय खड़ी है, यही कामधेनु है। मैंने कहा, "लेकिन भाई, यह अपार सामर्थ्य वाली गाय इस दशा में ? बाहर फाटक पर तो बड़ी सुन्दर गाय का चित्र बना हुआ था ?"

जब्बरसिंह ने बताया कि पहले यह गाय सचमुच बहुत स्वस्थ और

सुन्दर थी और जिन दिनों महर्षि वसिष्ठ के पास रहती थी, सारी कामनाएँ पूरी किया करती थी। राज्यलक्ष्मी के पास भी यह बहुत दिनों तक सही-सलामत रही, पर एक समय ऐसा आया कि इसकी शक्ति क्षीण होने लगी या इसने खुद ही किसी कारण से राज्यलक्ष्मी की कामनाओं की पूर्ति कम कर दी। राज्यलक्ष्मी बहुत परेशान हुईं। पहले तो उन्होंने इसको बहलाया-फुसलाया, इसकी पूजा-अर्चना की, लेकिन जब यह नहीं मानी तो उन्होंने इसका सानी-पानी कम करा दिया और यह आदेश जारी कर दिया कि जब तक यह कामनाएँ पूरी न करे, इसे भूखों मारा जाये। बस, जिन्दा रखने के लिए बीच-बीच में थोड़ा चारा डाल दिया जाये। लेकिन यह तरकीब भी कारगर नहीं हुई और गाय बहुत ढीठ होती दिखायी दी तो राज्यलक्ष्मी इसे मार-मार कर इससे अपनी इच्छाएँ पूरी कराने लगीं। यह जो खाल उधड़ी हुई दिखायी दे रही है, इसी का परिणाम है।"

"तब तो वाकई गम्भीर बीमारी है।" मैंने कहा, "लेकिन यह उनकी कामनाएँ पूरी करती क्यों नहीं ?"

"यही तो मालूम करना है।" जब्बरसिंह ने कहा और मुझे बाहर ले आया।

तब तक राज्यलक्ष्मी शायद खड़ी-खड़ी थक गयी थीं और उनके लिए वहाँ एक सिंहासन लाकर रख दिया गया था। उनकी सेविकाएँ उन पर छाया करने के लिए चमकीली झालरों वाला वह विशाल छत्र लिये धूप में खड़ी थीं। कुछ अन्य सेवक भी वहाँ आ गये थे जिनमें से कुछ पंखे झल रहे थे और कुछ ठंडे पानी या शर्बत के सुराही-गिलास लिये खड़े थे। वे सब राज्यलक्ष्मी को शीतल रखने के लिए स्वयं धूप में पसीने-पसीने हो रहे थे। एक सेक्रेटरी राज्यलक्ष्मी द्वारा दिये जा रहे आदेश लिख रहा था।

हमें कामधेनु के पास से वापस के आते देख राज्यलक्ष्मी ने आदेश लिखवाना बन्द कर दिया और सीधे मुझसे पूछा कि क्या मैं गाय की बीमारी समझ गया हूँ ? मैंने जब्बरसिंह द्वारा रटायी गयी बातें दोहरा दीं, 'लेकिन दबी जबान से अपना विचार भी—जब्बरसिंह की इच्छा के विरुद्ध—व्यक्त कर दिया कि गाय भूखी और जख्मी है और अन्य किसी रोग का

इलाज करने से पहले उसके इन दो रोगों का इलाज अत्यन्त और तुरन्त आवश्यक है।

राज्यलक्ष्मी प्रसन्न दिखायी दी। उन्होंने जब्बरसिंह की ओर देख कर मुझसे कहा, "हमें यथार्थवादी और स्पष्टवादी लोग बहुत पसन्द है। हमें वे चापलूस पसन्द नहीं जो हमे अंधेरे में रखते है।" इतना कह कर राज्यलक्ष्मी उठ खडी हुई और मुझसे बोली, "हम हर तरफ से निराश हो चुके हैं डाक्टर भारद्वाज, अब आपका ही भरोसा है। डाक्टर जब्बर ने आपकी बहुत प्रशंसा की है। क्या आप कामधेनु का इलाज करना स्वीकार करेंगे?"

"मैं पूरी कोशिश करूँगा।" मैंने कहा।

"तो ठीक है। समझ लीजिए कि हमने आपको अपनी कामधेनु का प्रमुख चिकित्सक नियुक्त कर लिया है। बाकी चीजें मेरे सेक्रेटरी आपको बता देंगे।"

मुझे धक्का-सा लगा और मैंने तुरन्त जब्बरसिंह की तरफ देखा। उसका चेहरा एकदम काला पड़ गया था। तभी राज्यलक्ष्मी ने उससे कहा, "और डाक्टर जब्बर, आप कुत्तों का ही काम देखिए। दो जगह ध्यान बँटेगा तो आप उनकी देखभाल ठीक से नहीं कर पायेंगे।"

जब्बरसिंह से किसी उत्तर की अपेक्षा किये बिना वे घूम कर महल में चली गयी।

सेक्रेटरी ने तुरन्त आगे बढ़ कर मुझसे हाथ मिलाया और बधाई देते हुए मेरा नियुक्तिपत्र मुझे पकडा दिया। फिर उसने मुझे एक लिफाफा देते हुए कहा, "और यह है आपकी आज की विजिट की फीस।"

तभी जब्बरसिंह ने मुझसे हाथ मिलाया, लेकिन बधाई के शब्द उसके मुँह से नहीं फूटे। वह एकदम रोने-रोने को हो रहा था।

वापस लौटते समय मैंने लिफाफा खोल कर देखा। उसमें 'सधन्यवाद' की पर्ची के साथ मेरे नाम पाँच हजार का चैक था। इम्पाला में मेरे साथ बैठा जब्बरसिंह चैक देख कर तिलमिलाया और मुँह फेर कर दूसरी तरफ देखने लगा। मैं समझ गया और मैंने मन ही मन कहा—कमीने, तुम पाँच सौ मुझे देकर खुद साढे चार हजार कमाने आये थे मेरे बूते पर!

साढ़े चार हजार ही क्यों, मेरे बूते पर तुम यह दस हजार रुपये मासिक की नौकरी भी लेना चाहते थे। लेकिन सब दिन रविवार नहीं होते मेरे भाई!

मेरे मन में जब्बरसिंह के प्रति जितनी घृणा उत्पन्न हुई, उतना ही सम्मान-भाव राज्यलक्ष्मी के प्रति उमड़ा। आखिर हीरे की परख जौहरी ही जानता है। महारानी ने रत्न धूल में पड़ा देखा, उठा कर अपने पास रख लिया। दुनिया में गुणग्राहक लोग अभी बचे हुए हैं। यह सोचते हुए मैंने खिड़की से बाहर देखा तो दुनिया मुझे बहुत सुन्दर दिखायी दी। लेकिन तभी मुझे ध्यान आया कि मैं जब्बरसिंह के कपड़े पहने हुए हूँ और यह चाहे तो अभी अपने कपड़े उतरवा कर मुझे नंगा कर सकता है। मन ही मन मैंने उसे फिर गाली दी—कमीना, धोखेबाज!

लेकिन आज सोचता हूँ कि कामधेनु स्टेट की धोखेबाजी के सामने जब्बरसिंह की धोखेबाजी तो कुछ भी नहीं थी।

अब मैं कामधेनु का प्रमुख चिकित्सक हूँ। दस हजार रुपये मासिक वेतन। रहने के लिए कामधेनु स्टेट की तरफ से सजा-सँवरा बँगला। इस्तेमाल के लिए कार और टेलीफोन। नौकर-चाकर या सहायक वगैरह मैं जो और जितने चाहूँ, स्वेच्छा से रख सकता हूँ। उनकी नियुक्ति स्टेट की तरफ से हो जाती है। काम करने के लिए मुझे एक पशु-चिकित्सालय, एक प्रयोगशाला और एक पुस्तकालय मिला हुआ है। कामधेनु स्वास्थ्य विभाग के समस्त अधिकारी, वैज्ञानिक, चिकित्सक, अनुसंधानकर्ता तथा अन्य कर्मचारी सब मेरे अधीन काम करते हैं। कहाँ तो वह देहाती ढोर-डंगरों का मामूली डाक्टर, और कहाँ यह कामधेनु का प्रमुख चिकित्सक!

मेरी बड़ी बेटी विशेष शिक्षा प्राप्त करने अमरीका गयी हुई है और छोटी बेटी इंग्लैंड। मेरी पत्नी, जो शादी के दस वर्ष बाद ही बूढ़ी हो गयी थी, अब चालीस की उम्र में भी जवान दिखायी देती है। उसका सूखा हुआ शरीर भर गया है और रंग खूब गोरा निकल आया है। अंग्रेजी में बात करना और गाड़ी चलाना उसने सीख लिया है। मेरे दोनों लड़के नयी दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं। पत्नी ने अपने लिए

अलग गाड़ी ले ली है, जिसमे वह दोनों लडको को स्कूल पहुँचाने और वहाँ से लाने खुद जाती है, क्योंकि घर का काम-काज करने के लिए नौकर हैं और वह पड़ी-पडी ऊबती रहती है। ग्रीन पार्क की तरफ हमने अपने लिए एक बड़ा प्लाट ले लिया है और निर्माण शुरू करा दिया है।

जब्बरसिह, जिससे मैं बहुत ईर्ष्या करता था, अब मुझसे काफी पीछे रह गया है। मेरी पत्नी ने भी दो कुत्ते पाल लिये हैं और उनका इलाज वह जब्बरसिह से ही कराती है। शायद उसे नीचा दिखाने के लिए। मुझे यह अच्छा नही लगता, हालाकि मैं कई बार मन ही मन उसे गालियाँ दिया करता हूँ कि वही कुत्तागीर मुझे यहाँ बेच गया था।

नही, यहाँ आकर मैं बिल्कुल खुश नही हूँ। यहाँ आकर मैं एकदम निकम्मा और निरर्थक हो गया हूँ। कामधेनु के लिए मैं चाहते हुए भी कुछ नही कर पा रहा हूँ।

नियुक्ति के दिन राज्यलक्ष्मी के मुँह मे अपनी यथार्थवादिता और स्पष्टवादिता की प्रशसा सुन कर मैं बहुत उत्साहित हुआ था और यहाँ आकर प्रमुख चिकित्सक का पद सँभालते ही मैंने उन्हे सुझाव दिया था कि गाय को उन अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों से निकाल कर कुछ दिनो के लिए मुझे सौप दिया जाये, चिकित्सालय में रख कर मैं पहले उसके जख्मों का और भूख से उत्पन्न दुर्बलता का इलाज कर लूँ, फिर बाकी बीमारियों का इलाज करूँगा। लेकिन राज्यलक्ष्मी मेरा सुझाव सुन कर प्रसन्न नहीं हुई।

उन्होंने कहा, "यह उचित नही होगा डाक्टर भारद्वाज! आप अभी इस गाय को जानते नहीं है। मैं जानती हूँ, यह बडी मक्कार गाय है। आपके दिल के दर्द को मै समझती हूँ, लेकिन दर्द मेरे दिल मे भी कम नही है। पहले इतनी बड़ी जागीर थी हमारे पास, कि मैं सम्राज्ञी कहलाती थी। और आज वह साम्राज्य सिकुडते-सिकुडते इतना छोटा हो गया है कि मै एक मामूली महारानी बन कर रह गयी हूँ। सो भी प्रजा के हृदय मे मेरे लिए अब कोई प्यार नही, सम्मान नही। केवल भय है, लेकिन भय के बल पर कब तक शासन किया जा सकता है? मजदूर, किसान, शूद्र और आदिवासी लोग मेरे विरुद्ध सिर उठाने लगे है। जगह-जगह सभाएँ होने लगी हैं। गुप्त

संगठन बनने लगे हैं। खुले आम प्रदर्शन और हड़तालें तो रोज की बातें हैं। मेरे राजकर्मचारियों का ही नहीं, मेरा अपना जीवन तक असुरक्षित हो गया है। दो बार मैं खुद मौत के मुंह में जाते-जाते बची हूँ। आते-जाते जो देहाती इलाका पार करना पड़ता है न, इतना खतरनाक हो गया है कि झाड़ियों के पीछे से मेरी गाड़ी पर अचानक पत्थर बरसने शुरू हो जाते हैं और कार के शीशे चकनाचूर हो जाते हैं। सुरक्षा का पूरा प्रबंध होने के बावजूद। पत्थरबाजों की तलाश होती है, कुछ पकड़े भी जाते हैं, लेकिन खतरा कहाँ टलता है! हर समय चिंताएँ घेरे रहती हैं। लगता है, इन्हीं चिंताओं के कारण असमय बूढ़ी हो गयी हूँ और मृत्यु का क्षण निकट आता जा रहा है। और यह सब है क्यों? इस कमबख्त गाय के कारण।"

"गाय के कारण?" मैं समझा नहीं।

"इसकी केस-हिस्ट्री पढ़िए, सब मालूम हो जायेगा।" राज्यलक्ष्मी ने कहा।

"वह तो मैं पढ़ूंगा, लेकिन उसकी भूख और जख्मों का इलाज तो अत्यंत और तुरंत आवश्यक है।" मैंने नियुक्ति वाले दिन की स्पष्टवादिता अपनाते हुए कहा।

"आप समझ नहीं रहे हैं। भूख और जख्म उसके रोग नहीं हैं, उसका रोग कुछ और है। वह मेरी कामनाएँ पूरी नहीं करती। मुझसे असहयोग करती है। ऊपर से भरपेट खाना और स्वतंत्र रहना चाहती है। लेकिन सवाल यह है कि उसे भरपेट खिलायें तो हम क्या खायें? उसे स्वतंत्र कर दें तो हम कहाँ जायें?"

"लेकिन उसके असहयोग का कारण क्या यह नहीं है कि वह भूखी और जख्मी है? स्वयं अस्वस्थ और अशक्त होकर वह आपसे क्या सहयोग कर सकती है? मेरे विचार से तो सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि उसकी पिटाई बंद हो, उसे भरपेट चारा दिया जाये, और स्वास्थ्यप्रद वातावरण में रखा जाये।"

"नहीं, ऐसा करने पर उसका दिमाग और भी खराब हो जायेगा।"

"मतलब?"

"थोड़ी देर में उसकी पूजा होने वाली है। उस समय आकर देखिए।

मतलब आप स्वय समझ जायेंगे।" राज्यलक्ष्मी ने कहा और बात समाप्त कर दी।

कामधेनु की पूजा महल के पिछवाडे उसी खुली जगह में होती है, जहाँ जानवर बँधे रहते हैं। नियत समय पर मैं वहाँ पहुँच गया। राज्यलक्ष्मी अपने सिंहासन पर आसीन वहाँ उपस्थित थी। महल के और तमाम लोग भी वही जुटे हुए थे। थोड़ी देर बाद गाय को उसकी झोपडी से निकाल कर बाहर लाया गया और बीच मैदान मे एक खूटे से बाँध दिया गया। राज्यलक्ष्मी यंत्रवत उठ कर गाय के सामने खड़ी हुई और हाथ जोड कर दैनिक प्रार्थना के रुटीन स्वर मे बोली, "माँ, हमे अन्न दो, वस्त्र दो, धन दो, शक्ति दो, और विरोधी शक्तियों का बल क्षीण करके जीवन मे शाति दो।"

लेकिन गाय अपनी उदास आँखो से शून्य को ताकती चुपचाप खड़ी रही। राज्यलक्ष्मी ने अपनी प्रार्थना पुन. दोहरायी। गाय पर फिर भी कोई प्रतिक्रिया नही हुई। खुले में आकर वह और भी भयानक लग रही थी। असंख्य मक्खियों ने उस पर धावा बोल दिया था और उसके क्षत-विक्षत शरीर के आहार की लालसा वाले अनेक चील, कौए और गिद्ध उसके ऊपर आकाश मे मँडराने लगे थे, जिनसे वह आतंकित दिखायी देती थी। राज्यलक्ष्मी संयत रहने की चेष्टा करती दिखायी दे रही थी, लेकिन जब तीसरी बार प्रार्थना करने पर भी गाय वैसे ही खड़ी रही तो वे उसकी धृष्टता पर आपा खो बैठी और हंटर-चाबुक लिये तैयार खड़े अपने सेवकों को उन्होंने एक चिर-परिचित-सा संकेत कर दिया।

तुरत चार व्यक्ति आगे बढ़ आये। उनकी पोशाकें विचित्र थी। एक खाकी वर्दी मे था, दूसरा हरी वर्दी में, तीसरा काला चोगा पहने हुए था और चौथा झक सफेद खादी का चूड़ीदार पाजामा, अचकन और टोपी। सकेत पाते ही वे चारों ओर से गाय पर टूट पड़े। खूटे से बँधी हुई गाय चारों तरफ से सड़ाक-सडाक बरसते चाबुको के नीचे एक गोल चक्कर में भागती आर्तनाद करने लगी। वह रस्सा तुड़ा कर, खूटा उखाड़ कर और उन जल्लादों का घेरा तोड़ कर भागना चाहती थी, लेकिन भाग नही पा रही थी। बस, चक्कर काट रही थी और पिट रही थी। उस दुर्बल काया में जान ही कितनी थी! थोड़ी ही देर मे वह बेदम-सी होकर ढह पड़ी।

तब राज्यलक्ष्मी जल्लादों को हट जाने का आदेश देकर गाय के पास आयी। पुनः हाथ जोड़ कर उन्होंने कामनाएँ कीं, "माँ, हमें अन्न दो, वस्त्र दो, धन दो, शक्ति दो, और विरोधी शक्तियों का बल क्षीण करके जीवन में शांति दो।" और जीभ निकाल कर मुर्दे की तरह पड़ी गाय की गरदन ने जरा-सा हिल कर मानो 'एवमस्तु' कह दिया।

अचानक घंटे-घड़ियाल बज उठे और प्रसाद वितरित होने लगा। पूजा समाप्त हुई। लेकिन मैंने देखा, राज्यलक्ष्मी गाय के आगे घुटनों के बल बैठ गयी और रोने लगी। पता नहीं, वे गाय के दुर्भाग्य पर आँसू बहा रही थीं, या अपने दुर्भाग्य पर। रोते-रोते उन्होंने उससे कहा, "तुम शांतिपूर्वक हमारी कामनाएं पूरी कर दिया करो तो क्यों इतना कष्ट तुम्हें उठाना पड़े?" यह कह कर वे उठीं। लोगों की भीड़ में उन्होंने मुझे देख लिया और गाय के जख्मों का उपचार करने का आदेश देकर तुरंत महल की ओर चली गयीं।

मैं वहीं उसकी भरसक मरहम-पट्टी करने लगा, लेकिन मैं समझ रहा था कि यह सब व्यर्थ है, क्योंकि कल सुबह तक इसके जख्मों को भरने का चमत्कार मैं नहीं कर सकूंगा जबकि पूजा का समय हो जायेगा और फिर यही क्रूर प्रक्रिया दोहरायी जायेगी।

उस दिन से मैं रोज यह भयानक दृश्य अपनी आँखों से देखा करता हूँ। पूजा समाप्त हो जाने के बाद मैं गाय की मरहम-पट्टी करता हूँ और मेरे सहायक उसके लिए सानी-पानी का इंतजाम करते हैं। मैं देखता हूँ, सामने पानी की बाल्टी और चारे की टोकरी आ जाने पर भी गाय काफी देर तक यों ही पड़ी रहती है। फिर भयंकर कष्ट के साथ अपनी टाँगें घसीटती हुई उठने की कोशिश करती है। उठने की कोशिश में कई बार गिर-गिर पड़ती है। लेकिन अजीब गाय है, मरती नहीं, फिर से उठ कर खड़ी हो जाती है। पुराने घावों पर लगे ताजा घावों से फटी-चिथड़ी उसकी देह पर बहते रक्त और फट कर उधड़ आये मांस को देखना अपने आप में कितनी भयंकर यातना है! लेकिन उसका चिकित्सक होने के नाते मुझे देखना ही पड़ता है।

शुरू-शुरू में मेरे संवेदनशील मन पर इसका बड़ा भयानक प्रभाव पड़ता था

गाय के ऊपर होने वाला प्रत्येक आघात जैसे मेरी आत्मा पर होता और मैं बिलबिला उठता। अंदर तक दहल-दहल जाता। दिन भर मेरी आँखों मे चाबुको की बौछार के नीचे खूटे से बँधी विवश चक्कर काटती गाय का क्षत-विक्षत रक्तावत शरीर घूमता रहता और रात को स्वप्नों में उसके ताजे-पुराने सूखे-रिसते जख्मो की लंबी-लंबी धारियाँ हंटरो-चाबुको का रूप धारण करके मुझे सड़ाक्-सड़ाक् मारने लगतीं। मेरी नींद गायब हो जाती और जागृति मे भी चैन न पड़ता। लगता, मैं विक्षिप्त हो जाऊँगा। मेरी आत्मा कचोटती कि गाय पर अन्याय हो रहा है और मैं इसका साक्षी ही नही, भागीदार भी हूँ। मेरा जीवन कितना बडा फ्रॉड है कि मैं उसका चिकित्सक ही नही, प्रमुख चिकित्सक हूँ, दस हजार रुपये मासिक वेतन पाता हूँ उसके नाम पर, और उसके लिए कुछ भी नही कर सकता हूँ।

राज्यलक्ष्मी को गाय की पूजा करने से कैसे रोक सकता था मैं? आखिर मैं गाय का नही, राज्यलक्ष्मी का नौकर था। उनसे कुछ कहता तो वे कहने लगती, "आप रोज देखते हैं, मैं इसे कितना समझाती हूँ। इसके सामने कितना रोती हूँ, गिडगिडाती हूँ। इसे कितना प्यार करती हूँ मैं। हमेशा इससे कहती हूँ कि तेरे बिना मैं जिंदा नही रह सकती। लेकिन यह सुनती है? पशु है न! इसानों की भाषा कैसे समझेगी। यह तो बस, हंटरो-चाबुको की भाषा समझती है। भला कौन अपने जानवर को सताना चाहता है? लेकिन जानवर जानवर की तरह तो रहे। यह क्या कि जानवर हमारी बराबरी करने लग जायें! यहाँ दूसरे जानवर भी तो है। उन्हें जितना चाहो, दुह लो, वे जरा भी आनाकानी नही करते, चाहे उनके पाडे-बछड़े भूखो मर जायें। लेकिन यह! इसकी नस-नस मे अवज्ञा है, उद्दडता है, विद्रोह है। लेकिन इसे समझा दीजिए, यहाँ का नियम है कि यहाँ अवज्ञा, उद्दडता और विद्रोह बरदाश्त नही किये जाते। नही किये जायेंगे कभी भी। यह बात आप इसे अच्छी तरह समझा दीजिए।"

लेकिन मैं यह बात इस गाय को कैसे समझाता? खुद मेरी समझ में इसका यह विचित्र व्यवहार नही आता था। सोचा करता—आखिर इसमें कौन-सी ऐसी शक्ति है जो इतनी यातना के बावजूद इसे जीवित और सघर्षशील रखती है? और इस सवाल का कोई जवाब मुझे न मिलता तो यह सवाल

बूमरैंग की तरह पलट कर मुझ पर मार करता—आखिर तुममें ऐसी कौन-सी कमी है कि इतनी अन्यायपूर्ण यातना रोज अपनी आँखों से देखते रहने के बावजूद तुम एकदम मुर्दा और संघर्षविहीन हो।

कई बार मैंने फैसला किया कि यह नौकरी छोड़ दूं और वापस अपने उस देहाती अस्पताल में चला जाऊँ—उन किसानों के बीच, जो अपने गोधन पर ऐसी मार पड़ते देखें तो लड़ मरें या जल्लादों के हाथ तोड़ कर रख दें। लेकिन मैं नौकरी छोड़ नही सका। चाह कर भी अब यह मेरे लिए संभव नही रह गया था। अपने मन की शांति के लिए मैं अपने परिवार को इस स्वर्ग के सारे फैलाव मे से समेट कर उस नरक मे वापस नही ले जा सकता था। कोई भी मेरे साथ लौटने को तैयार नही था। मैं खुद भी शायद।

धीरे-धीरे मेरी संवेदना भोथरी होती गयी और आज मैं इतना पत्थरदिल हो गया हूँ कि मेरे सामने सडाक्-सडाक् पिटती और आर्त स्वर में डकराती वह लहूलुहान गाय, जो चाह कर भी उन जल्लादों का घेरा तोड़ कर भाग नही पाती, मुझमे कोई सिहरन-सवेदन नही जगा पाती है।

मैं जानता हूँ कि मैं कामधेनु का इलाज नही कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि कामधेनु स्टेट मे कामधेनु के नाम पर एक भयानक पाखंड चल रहा है। मैं जानता हूँ कि मेरी नियुक्ति उसे स्वस्थ करने के लिए नही, केवल उसे जीवित रखने के लिए हुई है, ताकि वह अगले दिन फिर भयानक यातनाएं सह कर राज्यलक्ष्मी की कामनाएँ पूरी कर सके। मैं जानता हूँ कि गाय का यह मूक विरोध और असहयोग उसकी परिस्थितियों मे उसके मुक्ति-संघर्ष का एकमात्र किंतु अनिवार्य उपाय है और मैं यह भी जानता हूँ कि गाय की यह मुक्ति-चेष्टा, जिसे राज्यलक्ष्मी गाय का रोग कहती हैं, वास्तव मे उसका रोग नही स्वास्थ्य है, उसका जीवन है, उसके अस्तित्व की बुनियादी शर्त है। फिर भी मैं क्यों राज्यलक्ष्मी के स्वर में स्वर मिला कर कह देता हूँ कि यह रोग है? मैं क्यो भूल जाता हूँ कि मैं एक डाक्टर हूँ और डाक्टर का काम अपने स्वास्थ्य के लिए प्रयत्न करने वाले को रोगी बताना नही, बल्कि रोगी को स्वस्थ बनाना है?

मुझसे पहले वाला कामधेनु का प्रमुख चिकित्सक, सुना है, पागल हो गया था। मैंने उसे कभी नही देखा। लेकिन वह मुझे स्वप्न मे दिखायी देता

है वह मुझसे कहता है—मूर्ख, तुम इतना भी नही समझ पाते कि राज्यलक्ष्मी उसे स्वस्थ करना नही चाहती, बल्कि अस्वस्थ रख कर अपना काम निकालते रहना चाहती है ? लेकिन कौन मूर्ख यह नहीं समझता है ! फिर भी हताश होकर कभी-कभी मैं गाय को समझाने की मूर्खता करता हूँ—क्यो पिटती हो ? क्यो नही उनके कहते ही उनकी कामनाएँ पूरी कर देती हो ? लेकिन गाय मेरे प्रति उपेक्षा, अवज्ञा, व्यग्य, उपहास और घृणा के भाव आँखों मे भरे मानो मुझसे कहती है—लानत है तुम पर ! सब कुछ जानते-बूझते हुए भी यह सलाह देते हो !

हाँ, मैं सब कुछ जानता-बूझता हूँ।

नियुक्ति के पहले दिन से ही मैंने कामधेनु की केस-हिस्ट्री का अध्ययन शुरू कर दिया था और चिकित्साशास्त्र की पुस्तको के साथ-साथ बहुत-से पौराणिक ग्रथ भी पढ़ डाले थे। और सब तो सामान्य ज्ञान की बाते थी, लेकिन कामधेनु के इतिहास मे दो घटनाएं मुझे बडी विचित्र मालूम होती, जिनके अर्थ मैं काफी दिमाग लडा कर भी न समझ पाता। एक तो कामधेनु के उद्‌भव की ही घटना थी। पुराणों मे लिखा था : जब दुर्वासा के शाप से इद्र आदि देवताओं का सब ऐश्वर्य नष्ट हो गया था और वे जराक्रांत हो गये थे, तब उन्होने असुरो के साथ एक छलपूर्ण सधि की थी और उनके बल से अमृत-मंथन करके चौदह रत्नो के बीच इस कामधेनु को भी समुद्र से निकाला था। फिर वे चौदहो रत्न असुरों को मूर्ख बना कर देवताओं ने अपने पास रख लिये थे। क्यों रख लिये थे ? क्या असुरों का इन पर कोई अधिकार नही था ? खैर, वह पुरानी बात रही, महारानी राज्यलक्ष्मी के पास उन चौदह रत्नो मे से यह एक रत्न कब, कैसे और कहाँ से आ गया ? क्या ये भी देवता वर्ग की है ? तो फिर अब कामधेनु इनके पास होते हुए भी किस दुर्वासा के शाप से इनका ऐश्वर्य नष्ट हो रहा है और ये जराक्रांत हो रही है ?

दूसरी घटना मुझे वाल्मीकि रामायण मे मिली। वह तो इतनी विचित्र थी कि मैंने उसे बार-बार पढ़ा और जितनी बार पढा, मैं उलझता गया, हालांकि हर बार पढते समय मुझे लगता कि सब कुछ मेरी आँखो के सामने घटित हो रहा है : महातेजस्वी राजा विश्वामित्र अपनी अक्षौहिणी सेना

के साथ पृथ्वी पर विचरण करते-करते महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में आ पहुँचे है और वसिष्ठ उनका स्वागत-सत्कार करने के लिए अपनी शबला कामधेनु से कह रहे हैं, "शबले, मैंने सेना सहित इन राजर्षि का भोजन द्वारा सत्कार करने का निश्चय किया है। तुम षड्रस भोजनों में से जिसको जो-जो पसंद हो, उसके लिए वह सब प्रस्तुत कर दो।" और कामधेनु राजा विश्वामित्र के देखते-देखते ईख, मधु, लावा, मैरेय, आसव, पानक, खीर और दाल-भात से भरी हुई सहस्रों थालियाँ सजा रही है। उस भोजन से विश्वामित्र की सारी सेना तृप्त हो गयी है और राजा विश्वामित्र भी अंतःपुर की रानियों, ब्राह्मणों और पुरोहितों सहित हृष्ट-पुष्ट हो गये हैं। और तब राजा विश्वामित्र पहले धर्म के नाम पर वसिष्ठ से इस गाय को माँगते है और वसिष्ठ के इनकार करने पर इसका मूल्य देने को प्रस्तुत हो जाते है। लेकिन वसिष्ठ एक लाख गायों के बदले भी इस गाय को देने को तैयार नहीं होते। विश्वामित्र मूल्य बढ़ाते जाते हैं, लेकिन वसिष्ठ सौ करोड़ गायों, चाँदी के ढेरों, सोने से मढ़े चौदह हजार हाथियों, चार-चार सफेद घोड़ों वाले आठ सौ सुवर्णमय रथों और उत्तम जाति के महातेजस्वी ग्यारह हजार घोड़ों के बदले भी कामधेनु को स्वयं से पृथक् करने को तयार नहीं होते। कहते हैं, "राजन्, मैं यह चितकबरी गाय तुम्हें किसी तरह भी नहीं दूंगा। यही मेरा रत्न है, यही मेरा धन है, यही मेरा सर्वस्व है और यही मेरा जीवन है।" और जब बलोन्मत्त महाबली राजा विश्वामित्र की आज्ञा से उनके सैनिक जबर्दस्ती इस गाय को वसिष्ठ से छीन कर घसीटते हुए ले जाने लगते हैं, तो यह उन सैकड़ों सैनिकों को झटक कर चली आती है और अपनी मुक्ति के लिए अपनी हुंकार से पह्लव, यवन, शक, काम्बोज, बर्बर, म्लेच्छ, हारीत और किरात जातियों के सहस्रों वीर उत्पन्न करती है जो पैदल, हाथी, घोड़े और रथ सहित विश्वामित्र की सारी सेना का संहार कर डालते हैं।

कामधेनु की केस-हिस्ट्री के इस अंश ने मुझे चक्कर में डाल दिया। मुझे लगता, इसकी बीमारी का कारण यहीं कहीं छिपा हुआ है, जो पकड़ में आता हुआ लगता है, लेकिन आते-आते रह जाता है।

एक दिन मैं यही सब सोचते-सोचते अखबार पढ़ रहा था कि अचानक

एक खबर पढ कर चौंक गया। कामधेनु स्टेट के एक भाग में कुछ क्रांतिकारी पकडे गये थे, जिनकी नामावली अखबार मे प्रकाशित हुई थी। उनकी जातियाँ देख कर मैं चिल्ला उठा, "अरे, ये तो वे ही यवन, शक, काम्बोज, वर्वर, म्लेच्छ, हारीत, किरात हैं !"

मेरी पत्नी मुझे चिल्लाते सुन मेरे पास दौडी आयी और पूछने लगी, "क्या हुआ ? क्यों चिल्ला रहे थे ?"

मैं क्या उत्तर देता ! समझाता भी तो उसे क्या समझाता, और कैसे ! मेरी नसों मे भय समा गया था और देह मे रक्त-संचार वद हो गया लगता था। बडी मुश्किल से 'कुछ नही' कह कर मैंने पत्नी को टाला और गाडी मे वैठ कर सीधा कामधेनु के पास पहुँचा।

वह रोज की तरह अपनी पिटी-पिटायी, क्षत-विक्षत, दुर्बल काया लिये अपने गोवर-मूत की गदगी मे शात खड़ी थी। मुझे लगा, यह इसकी दयनीय शांति महज एक नाटक है। भीतर ही भीतर यह घृणा और हिंसा से सुलग रही है। ऊपर से भोली-भाली दीखने वाली यह गाय बहुत ही खतरनाक है।

मैं उसके पास आकर जोर से चिल्लाया, "तो यह सब तुम्हारी हुकार से हो रहा है ! तुम ही उकसा रही हो म्लेच्छो और शूद्रों को ! तुम ही भडका रही हो आदिवासियो को ! तुम ही पैदा कर रही हो मजदूरों और किसानो में मे लडाके वीर ! मैं सब समझ गया। उन्ही के वल का भरोसा है न तुमको ? उन्ही के भरोसे तुम इतनी ढीठ हो गयी हो ? लेकिन सुन लो, अब वह पुराना जमाना नही रहा कि वे आक्रमण करेंगे और जीत जायेंगे। अब सामने विश्वामित्र की सेना नही है जो पुराने दकियानूसी हथियारो से लडती थी और हार जाती थी। अब तुम्हारी हुंकार से पैदा हुए वे सब पकडे जायेंगे। सबको जेलो में सड़ा दिया जायेगा, या एकदम गोली मार दी जायेगी। यह देखो, वे पकडे गये है—वे ही तुम्हारे यवन, शक, काम्बोज, वर्वर, म्लेच्छ, हारीत, किरात ! यह लो, पढ़ो आज की यह खबर !'

मैंने घर से लाया हुआ अखबार कामधेनु की आँखों के आगे कर दिया। लेकिन वह उसी तरह अपनी यातनाभरी पीड़ा में मौन शांत खड़ी रही।

अपनी उन्ही उदास आँखो से मुझ पर उपेक्षा, अवज्ञा, व्यग्य, उपहास और घृणा वरसाती हुई।

उसकी इस धृष्टता पर मुझे और गुस्सा आया। मैंने फिर चिल्लाते हुए कहा, "तुम समझती हो, वे तुम्हे मुक्त करा लेंगे ? लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है। वे चाहे हजारो-लाखों ही क्यों न हों, करोडो को वेवकूफ नहीं बना सकते। उनके पास वे साधन ही नही हैं, जबकि राज्यलक्ष्मी तुम्हें इसी तरह मार-पीट कर तुमसे काम भी लेती रहेगी और करोड़ों लोगों को यह विश्वास भी दिलाती रहेगी कि वे सबसे बड़ी गोभक्त हैं। पिछवाड़े की घोर गन्दगी मे ही सही, लेकिन तुम उनके महल में रहती हो, यह बात सब लोगों को मालूम है। स्टेट की सील पर, सनदो पर, झडो पर—सब जगह तुम्हारा चित्र और नाम अंकित है। यह स्टेट तुम्हारे नाम से जानी जाती है। लोगों को विश्वास है कि यहाँ राज्यलक्ष्मी नही, तुम शासन करती हो—तुम ! हंटरों और चाबुकों से ही सही, लेकिन इस वात से तुम कैसे इनकार कर सकती हो कि यहाँ रोज तुम्हारी पूजा होती है ? बोलो !"

गाय का उत्तर सुनने के लिए मैं रुका, और जब कई क्षण सन्नाटे में गुजर गये तो मैं काँप उठा। तब मुझे होश आया कि यह मैं क्या कर रहा हूँ। क्या मै पागल हो गया हूँ जो एक पशु के सामने चिल्ला रहा हूँ ? *क्या गाय अखवार पढ़ सकती है जो मैं इसे अखवार दिखा रहा हूँ ?*

'प्रतिमान', नवम्बर १६७८

प्रौढ़-पाठशाला

तुरन्त सारे गाँव में खबर फैल गयी कि दिल्ली से बनवारी आया है और अपने भाई बलवीर की प्रौढ़-पाठशाला बन्द कराने आया है।

ठाकुर चोबसिंह के चमचों ने सुना तो सूचना देने दौड़े। चोबसिंह अपनी पक्की बैठक के ऊँचे चबूतरे पर शाम की ठण्डी हवा मे मोढ़ा डाल कर बैठे अखबार पढ रहे थे। सूचना सुन कर उनका हाथ अपने आप मूँछों पर चला गया। ताव देकर मुस्कराते हुए बोले, "बस, अब बन गया काम। अब देखेंगे, बनवरिया के आगे बलवीरा क्या कर लेता है। बनवरिया महा गुस्सैल है। एक मिनट में सब टाट-पट्टी फिकवा देगा।"

"सुनते है, उसके बड़े भाई बिहारीलाल ने चिट्ठी लिख कर बुलाया है।"

"हाँ, चिट्ठी तो बिहारीलाल ने ही लिखी है, पर बुलाया हमने है।"

"आपने ?"

"हाँ, हमने। हमने बिहारीलाल से साफ कह दिया कि देखो भैया, बहुत हो चुका। अब तुम लोग खाल से बाहर होते जा रहे हो। बलवीरा हमारे फारम के मजदूरों को भडका रहा है। सोच लो, हमने अपने आदमियों को भडका दिया तो तुम्हारे घर में कानी चिरैया का पूत भी नही बचेगा। इसलिए खैर चाहो तो यह पाठशाला-फाटशाला बन्द करा दो।"

"अकड़े होंगे ?"

"बिहारीलाल ? बिहारीलाल कभी अकड़े है जो अब अकड़ेंगे ? अकडने वाला तो बलवीरा ही है। बनवरिया भी, चाहे दूसरों के सामने अकड ले, हमारे सामने आज तक नही अकडा।"

"लेकिन क्या अपने सगे भाई के खिलाफ हम लोगों का साथ

सकेगा ?"

"अरे, कैसा भाई और किसका भाई ! आज की दुनिया में ये रिश्ते कहीं रह गये हैं ? बलवीरा को जब हमने गोली मारी थी, यह किसके पक्ष मे बोला था ? आया था हमसे लड़ने, और गया माफियाँ माँगता हुआ । अरे, उसका बस चले तो वह अपने नाम की तरह अपने भाई, अपनी माँ और अपनी जनमभूमि भी बदल ले ।"

"क्या उसने अपना नाम बदल लिया है ?"

"और क्या ! दिल्ली मे बनवारीलाल जाट को कोई नहीं जानता ! वहाँ उसका नाम है मिस्टर बी० एल० जेट । जेट साहब कहलाता है, जेट साहब ! आखिर पढ़ा-लिखा है और अफसरी करता है। हम लोगों के लिए भले ही घर का जोगी जोगना हो, दिल्ली में उसकी बड़ी इज्जत है। बड़े ठाट-बाट से रहता है। महल जैसा बँगला मिला हुआ है। नौकर-चाकर है। हम तो अपनी आँखों से देख आये हैं। घर बैठे टेलीफोन पर सारी दुनिया से बात करता है। बड़े-बड़े लोगों के साथ उठना-बैठना है उसका। घरवाली भी पूरी अँगरेज मेम लगती है। छोटे-छोटे बालक भी उसके अँगरेजी बोलते है ।"

"आपने उससे बलवीरा के बारे में बात की थी ?"

"क्यो न करते ? उसके पास और गये ही किसलिये थे ? लेकिन थोड़ी तरकीब से काम लेना पड़ा । एक तरफ चारा फेंका कि मिनिस्टर से एप्रोच लगवा कर तुम्हारी तरक्की करा देंगे, दूसरी तरफ जरा धमकाया : देखो बनवारी, हम तुम्हारे भाई की शिकायत नही कर रहे है, पर उसे रास्ते पर लाना जितना तुम्हारा फर्ज है उतना ही हमारा । बलवीर गाँव मे राजनीति फैला रहा है और इसका अंजाम अच्छा नही होगा । वह तो मरेगा ही, साथ में तुम दोनों भाइयो को और गाँव के और कई लोगों को भी ले मरेगा । हम एक इशारा कर दें तो आज से ही उसके पीछे सी०आई०डी० लग जायेगी । सोच तो, वहाँ गाँव मे बिहारीलाल तो खिचे-खिचे फिरेंगे ही, यहाँ तुम्हारी भी पूछताछ होने लगेगी । हमने बलवीर को बहुत समझाया, लेकिन वह बड़ा उजड्ड हो गया है, किसी को कुछ गठानता ही नही । बिहारीलाल की भी नहीं सुनता । हो सके तो तुम आकर समझाओ

उसे। मान जायें तो ठीक है। नही तो भाई, तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।"

"वाह साहब, वाह! मान गये ठाकुर साहब! क्या राजनीति चली है। बलवीरा क्या खाकर ऐसी राजनीति करेगा!"

चमचों के द्वारा की गयी प्रशसा से चोबसिंह खुश हो गये। फौरन प्रोग्राम बनने लगा कि आज देसी का दौर चलेगा या विलायती का।

लेकिन चमचे आज बहुत खुश और उत्साहित नही थे। गाँव के दूसरे हिस्सो मे क्या कहा और सोचा जा रहा है, वे जानते थे, लेकिन चोबसिंह को बताने की हिम्मत नही कर पा रहे थे। बार-बार चोबसिंह के मुँह की ओर ताकते, जैसे ठीक-ठीक यह विश्वास कर लेना चाहते हों कि सकट के समय चोबसिंह उनकी रक्षा कर पायेंगे कि नहीं। संकट किसी भी समय खड़ा हो सकता है, वे जानते थे, लेकिन कह नही सकते थे। कहने से चोबसिंह की तौहीन होती है और अपनी तौहीन चोबसिंह कभी बरदाश्त नही कर सकते। क्यों करें? उनके पास पैसा है, ताकत है। लडकों-बहुओं, नाती-पोतों और कुत्तो-बिल्लियो तक के नाम लिखायी हुई दो सौ एकड़ जमीन के अकेले मालिक हैं। ट्रेक्टर, ट्यूबवैल, थ्रेशर, चक्की, जीप और बन्दूकें—क्या नही है इनके पास? लखनऊ से दिल्ली तक सरकार मे अपने आदमी बैठे हैं। पच, पटवारी, पुलिस और प्रशासक सब अपने हैं। पिछली बार टिकट मिलते-मिलते रह गया, नही तो विधायक, और क्या पता, मन्त्री ही बन गये होते।

लेकिन चमचो को यह समझने में दिक्कत हो रही थी कि इतने बड़े ठाकुर चोबसिंह एक इतने मामूली जाट मास्टर से इतना खौफ क्यों खाते हैं। या शायद वे समझ तो रहे थे, लेकिन खुद अपने दिलों का खौफ उजागर करने में दिक्कत महसूस कर रहे थे। मन ही मन सोच रहे थे:

असल किस्सा यह है ठाकुर साहब, कि आप डरते हैं। जब से आपके फारम पर काम करने वाले मजूर बलवीर की प्रौढ़-पाठशाला मे जाने लगे हैं, आप बौखलाये रहते है। हालांकि वे लोग आज तक आपके सामने खड़े होकर यह नही कह पाये कि हमे सरकारी रेट दीजिए, नही तो हम काम छोड़कर चले जायेंगे, फिर भी आप चिंतित रहते है। आपकी चिंता ठीक

भी है। यह किसी भी दिन हो सकता है। और अब आपका वह जमाना तो रहा नही कि रौब-दाब से काम चलता रहे। पहले तो आप किसी को भी किसी भी बात पर बुला कर ठुकाई करा देते थे और बाकी सब अपने आप काँपते रहते थे। पर अब नही। अब आप उन्हें बुलाते हैं तो वे अकेले नहीं आते। चार-पाँच साथ आते हैं। और चुप भी नही रहते। बलवीर ने उन्हें पढ़ा रखा है: तुम्हारे मुँह में क्या जीभ नही है ? तुम्हारी बाँहों मे क्या ताकत नहीं है ?

असल किस्सा यही है ठाकुर साहब, कि आप डरते हैं। अब आप अकेले कभी नही चलते। दो-चार लोगों को हमेशा हिलगाये रहते हैं। अकेले कहीं जाना ही पड़ जाये तो भरी हुई दुनाली साथ रखते हैं। दुनाली नही तो देसी कट्टा। आप कहते भी हैं: हाथ-लात का जमाना नहीं रहा, अब तो ससुरों को दूर से ही ठाँय-ठाँय करो। लेकिन आपकी ठाँय-ठाँय भी तो फिस्स हो जाती है। बलवीर को गोली मार कर आपने कौन-सी फतह हासिल कर ली ? अव्वल तो आप चोरों की तरह छिप कर जुझारसिंह की बगीची में बैठे, फिर आपने शाम के उस झुटपुटे में जबकि आसपास दगड़े मे कोई नही था, साइकिल पर आते उस निहत्थे पर गोली चलायी। वाह री बहादुरी ! और उधर बलवीर की बज्जर छाती देखिए। थाने में रपट लिखवाने तो क्या, पट्ठा अस्पताल भी नहीं गया। यहीं गोली निकलवा ली और चार दिन में चंगा हो गया। आपके कहने पर हमने बहुत समझाया, बहुत उकसाया, लेकिन वह थाने नहीं गया सो नहीं ही गया। बस, यही कहता रहा ' जब इतना बड़ा गाँव चुपचाप यह बेइंसाफी देख रहा है तो पुलिस-कचहरी मे मुझे क्या इंसाफ मिलेगा ?

और बेइंसाफी तो सचमुच हुई ही थी उसके साथ। सत्संगी महाराज को महायज्ञ करने के लिए आपने बुलाया था, यह तो ठीक। यज्ञ की चंदा वसूली के लिए सत्संगी महाराज के साथ आप नंगे पाँव गली-गली घूमे, यह भी ठीक। लेकिन चंदे में जोर-जबर्दस्ती करने की आपको क्या जरूरत थी ? लगान या कर्ज तो था नही कि हर घर मे पाँच-पाँच रुपये देने ही पड़ेंगे। अपनी-अपनी श्रद्धा की बात होती है, जो जितना दे रहा था, ले लेते। जो नही देना चाहता, उससे

जबर्दस्ती क्यों ? फिर, भंगियों और मुसलमानों को आपके यज्ञ से क्या लेना ? उनमें चंदा किस बात का ? और बलबीर अगर उनकी तरफ से बोल पड़ा तो क्या बुरी बात हो गयी कि आप उसे शूद्र-म्लेच्छ कहते हुए उस पर हाथ छोड़ बैठे ? सामने उनकी अम्मा खड़ी थी। उससे भी आपने गाली-गुफ्तार करनी शुरू कर दी। भला अपनी आँखों के आगे अपनी मैया की बेइज्जती कौन बरदाश्त करेगा ? माना कि वह आपको पटक कर आपकी छाती पर चढ़ बैठा था, लेकिन आप सूरमा थे तो वहीं उससे दो-दो हाथ क्यों नहीं कर लिये ? वहाँ से तो गालियाँ बकते हुए चले आये और बाद में चोरों की तरह छिप कर बेचारे को गोली मार दी। कोई इंसाफ है ? और अब गाँव के गरीब-गुरबा उसके साथ हो गये, उसकी पाठशाला में पढ़ने लगे, तो आपकी छाती क्यों फटती है ? और अब भाई को भाई से लड़ाने की जो राजनीति आप चल रहे है, यह क्या है ?

लेकिन चमचे आखिर चोबसिंह के चमचे थे। वे बलबीर के खिलाफ भी सोच रहे थे : क्या होगा ? बलबीर की प्रौढ़-पाठशाला चलती रहेगी या बन्द हो जायेगी ? बन्द हो जाये तो अच्छा है। अनर्थ की जड़ है। देखो न, पहले नीच-कमीन लोग मार और गाली-गुफ्तार सब सहते थे, पर चूँ नहीं करते थे। अब शिकायत करते हैं। हालाँकि वे अभी पूरी तरह संगठित नहीं है और उनमें से ज्यादातर अपने छोटे-छोटे फायदों के लिए ठाकुर साहब से एक-दूसरे की चुगली किया करते हैं, फिर भी उनकी एक हवा बन रही है। माहौल में एक तनाव पैदा हो गया है। सभी को यह लगने लगा है कि कुछ होकर रहेगा। ठाकुर लोग परेशान रहते है, बनिये डरे हुए और ब्राह्मण बौखलाये हुए। ठाकुर सब के सब चोबसिंह तो नहीं कि दबंग दिखा सकें, पर शान ठाकुरों वाली रखना चाहते हैं। इसलिए ऊपर से अकड़ते हैं, भीतर से खौफ खाये रहते हैं। क्या पता कब क्या हो जाये। और बनिये तो सदा के डरपोक हैं ही। पहले ताले-तहखाने की शरण लेते थे, अब अपनी हिफाजत के लिए गाँव के गुंडों को मुँहमाँगा पैसा देकर पालने लगे हैं। गुंडागर्दी हो रही है। रोज चोरी, डकैती और कतल। लेकिन सबसे ज्यादा दुखी है बेचारे ब्राह्मण। पौढ़-पाठशाला जब से खुली है, गाँव में उनकी इज्जत ही नहीं, आमदनी भी कम हो गयी है। पहले साठ साल का

बूढा भी ब्राह्मण के आठ साल के लड़के को 'पंडिज्जी पालागन' कहे बिना आगे नहो जा सकता था, और अब आठ साल का भगी भी साठ साल के ब्राह्मण को पालागन किये बिना निकल जाता है। नमस्ते या जैहिंद करता भी है तो इस तरह कि जैसे मजाक उड़ा रहा हो। इस तरह कैसे इस गाँव का काम चलेगा? इसलिए अच्छा है कि आज फैसला हो ही जाये। चोवसिंह ने ठीक ही सोचा है कि जहर को जहर से मारो। जो बलवीर बन्दूक की गोली से नही मरा, आज भाइयों की बोली से मरेगा। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि बात बढ जाये और गाँव मे फौजदारी हो जाये···

कच्चे घरो और टूटे-फूटे झोपडो में रहने वाले लोग भी दिल्ली से बनवारी के आने की खबर पाकर आशंकित हो उठे और गंज से बलवीर के लौटने की बाट जोहने लगे। पता नही, आज क्या होकर रहेगा।

प्रौढ-पाठशाला को बड़े लोगो का चोचला और बलवीर की नेतागीरी का साधन समझने वाले बूढों की बन आयी। कहने लगे: अब देख लो, हमने पहले ही कहा था, यह पढ़ाई-लिखाई सब झगडे की जड़ है। बिहारीलाल की भलमनसाहत के बल पर साल भर आग में मूत लिये, अब बैठो अपने घर। बनवरिया बड़ी तेज रकम है। ऊपर से मीठा बोलेगा, भीतर से कोड़ा फटकारेगा। जाओ आज, वह तुम्हारी टाट-पट्टी फेंक कर कूल्हे पर लात जमायेगा तब तुमको मालूम पड़ेगा कि पानी को पप्पा कैसे कहते हैं। अरे, हम लोगों की तकदीर में पढ़ना-लिखना होता तो नीचों में क्यो पैदा हुए होते? ठाकुर चोवसिंह की गढ़ी मे जनम न लेते? मोरपंखी पूँछ मे खोंस कर कौए मोर नही बन सकते। और हम चेताये देते है, आज अगर तुमने रत्ती भर भी चूं-चपड़ की तो गोली चल जायेगी। बनवारी को बिहारीलाल ने नहीं, ठाकुर चोवसिंह ने बुलाया है···

लेकिन जवानो और प्रौढ-पाठशाला में पढने वाले अधेड़ो का खून खौलने लगा। वे अपने बूढ़ों को फटकारने लगे: तुम अपने को नीच समझते हो, इसीलिए नीच बने हुए हो। बनवरिया कोई लपटट नही है कि आकर हुकुम देगा और हम भाग खड़े होंगे। चौपाल में उसका हिस्सा है, ठीक है, लेकिन

हिस्सा उसमे बलबीर और बिहारीलाल का भी है। और अभी तो घर की मुड्ढ उन तीनो की अम्मा जिंदा बैठी है। कल ही उसने कहा है कि बनवारी आता है तो आने दो, तुमको डर कर भागने की कोई जरूरत नही। और मान लो, चोवसिंह बनवरिया की मारफत बिहारीलाल और उनकी अम्मा को बलबीर के खिलाफ करके चौपाल खाली करा भी लेते है, तो क्या पाठशाला बन्द हो जायेगी ? चार भीतें खड़ी करके एक छप्पर डालने मे कितनी देर लगती है ? कही भी डाल लेंगे। हम तो बस यह देखना चाहते है कि धौंस-पट्टी से देखे कौन हमे वहाँ से भगाता है···

लेकिन करना क्या होगा, यह बलबीर के आने पर ही तय होगा। वह गज से आता ही होगा। गाँव मे घुसने से पहले ही उसे पूरी परिस्थिति से आगाह कर देने के लिए ससीलाल, चाँद, मेवाराम और उस्मान ट्यूबवैल पर जाकर बैठ गये हैं।

"पिंकिया, जा अपनी अम्मा से कह, चच्चा के लिए चाय बनाये।" बनवारी से कुशल-क्षेम पूछने के बाद बिहारीलाल ने अपनी बडी बेटी से कहा।

पिंकी को पिंकिया कह कर पुकारना बनवारी को बुरा लगा। अपनी भतीजी का नाम गुलबिया मे बदल कर उसी ने पिंकी रखा था।

बनवारी कहना ही चाहता था कि लडकी का इतना प्यारा नाम क्यों बिगाड कर रख दिया, कि तभी घेर में सानी-पानी करके आती हुई भौजी और छत पर से सूखे कंडे उठा कर नसैनी पर उतरती हुई अम्मा उसे दिखायी दी। उसी समय बाहर खेलते हुए पिंकी से छोटे तीनो बच्चे शोर मचाते हुए दौडते आये : चच्चा आ गये, दिल्ली वाले चच्चा आ गये ··

बनवारी ने मिठाई, कपडे और खिलौने निकाल कर बच्चो को व्यस्त किया, अम्मा और भौजी का हालचाल पूछा और बिहारीलाल से बोला, "क्या मामला है ? क्यों इतनी अर्जेंट चिट्ठी लिख कर बुलाया ?"

बिहारीलाल चिट्ठी मे सब कुछ लिख ही चुके थे, इसलिए संक्षेप में बोले, "अरे, वही प्रौढ-पाठशाला वाला झगडा है। अम्मा कहती है कि

चलने दो, लेकिन ठाकुर चोबसिंह बन्दूक लेकर धमकाते हैं कि यह धरम भ्रष्ट करने वाला प्रचार बन्द कराओ, नही तो घर भर के लोगों को गोली मार देंगे।"

"गोली क्यो मार देंगे ? चौपाल हमारी है, हम जैसे चाहेंगे, उसका इस्तेमाल करेंगे। इसमे उनके बाप का क्या जाता है ?" बनवारी ने तैश में, लेकिन इधर-उधर यह देखते हुए कहा कि चोबसिंह तक यह बात पहुँचा देने वाला तो कोई आसपास नही है।

भौजी सानी से सने हुए हाथ खेचू पर धोने चली गयीं और अम्मा कड़े जमीन पर रख कर आँगन के कच्चे फर्श पर बैठ गयी। बोली, "यही तो मैं कहती हूँ बेटा। और बलवीर कोई बुरा काम कर रहा होता तो कोई बात भी थी। अनपढ़ लोग चार अक्षर पढ जायेंगे, चार ज्ञान की बातें सीख लेंगे तो कोई बुराई हो जायेगी ?"

"लेकिन वह भंगी-चमारों और मुसलमानों तक को बुला कर सबके साथ क्यों बिठाता है ? जात-पांत और छुआछूत का खयाल रखने को क्यो मना करता है ?" बिहारीलाल ने कहा तो अम्मा भड़क कर बोली, "यह तो गांधीजी भी करते थे, नेहरूजी भी करते थे। चोबसिंह उनको गोली मारने क्यों नही गये ? तू बता बेटा, तू तो दिल्ली में रहता है। वहाँ सब तरह के लोग साथ नही उठते-बैठते हैं ? एक साथ नही खाते-पीते हैं ? पूरे देश की राजधानी का धरम भ्रष्ट नही होता, इस गामड़े का ही धरम भ्रष्ट होता है ?"

बनवारी को बोलने का मौका दिये बिना ही बिहारीलाल बोले, "अब तू कहेगी कि रूस-चीन मे जात-पाँत कोई नही मानता। लेकिन अम्मा, देस-देस की अपनी रीत होती है। शहर की बात और होती है, गाँव की बात और। शहर मे आनजात और हिन्दू-मुसलमान आपस मे ब्याह करने लगे है, पर तू बता, पिंकिया का हाथ जुम्मन लुहार या अनोखे चमार के बेटे के हाथ मे दे देगी ?"

चौके की रौस पर बैठी पिंकी रात की रोटी के लिए दाल बीन रही थी, यह सुन कर कुछ बोलने को हुई कि अम्मा के पास से कड़े उठा कर चौके मे जाती हुई भौजी ठिठक कर कहने लगी, "सौ बात की एक बात

है भैया, हमें अपनी जान भारी नहीं पड़ी है? जल में रह के मगरमच्छ से बैर नहीं साध सकते हम। तुम तो दिल्ली में बैठे अफसरी कर रहे हो और बलवीर के आगे नाथ न पीछे पगहा। छब्बीस के हो गये, काम-धन्धे से लग गये, फिर भी छड़े-छांट घूम रहे हैं। न किसी की बात का डर, न किसी की लात का डर। पर हमें तो हर घड़ी का खतरा है। इनको कुछ हो गया तो? पिंकिया तेरह साल की हो गयी, कल इसके हाथ पीले करने पड़ेंगे। छोटा को कमाने-खाने लायक होने में बरसों लग जायेंगे। और गाँव की हवा ऐसी बिगड़ी है कि रोज कतल होते हैं, रोज डाके पड़ते हैं।"

बनवारी जिस खाट पर बैठा था, उसके एक टूटे बान को उँगली पर लपेटता-खोलता चुपचाप सुनता रहा। अम्मा ने जवाब दिया, "फिर भी लोग जी तो रहे हैं। कतल और डकैती से डर के कहीं भाग तो नहीं रहे? चोवसिंह लिये फिरें अपनी बन्दूक, धमकाते फिरें सारे गाँव को। यहाँ तो छाती पर गोली खाकर भी लोग उनके तलुए नहीं चाट रहे। और अभी क्या है ब्याहुली, देखती जा, कल को पूरे गाँव में उन्हें बन्दगी करने वाला कोई नहीं मिलेगा। जोर-जुलम के दिन, कि नौ दिन। दस दसवें दिन?"

बनवारी समझ गया: भैया-भौजी एक तरफ हैं, अम्मा और बलवीर दूसरी तरफ। फालतू बहस बढ़ाने का मौका न देकर उसने बिहारी लाल से पूछा, "तो बोलो भैया, क्या सोचा है? मुझे क्या करना है?"

"करना क्या है, बलवीर को जरा ढंग से समझा देना है। हम उससे यह थोड़े ही कह रहे हैं कि तुम अपनी पाठशाला बन्द कर दो, हम तो बस इतना कहते हैं कि चोवसिंह से रार मत बढ़ाओ। अरे, वे जो हैं सो अपने भाग्य से हैं और उनकी जो करनी है सो उनके संग जायेगी। काजी, तुम क्यों दुबले शहर के अन्देसे? अगर चोवसिंह चाहते हैं कि जाटों की चौपाल में शूद्रों और म्लेच्छों की पाठशाला न चले, तो यहाँ से हट कर कहीं और चला लो। उसके बाद वे लोग जानें और चोवसिंह जानें।"

"और मैं कुछ नहीं जानूंगी?" अम्मा फिर बोल उठीं, "उन लोगों को अपनी चौपाल मैंने दी है और मैं उनसे खाली करने को नहीं कहूँगी। तुम जबर्दस्ती खाली कराओगे तो समझ लूंगी कि अब इस घर पर मेरा कोई हक-इख्तियार नहीं रहा। मांग लूंगी कि यहाँ से दाना-पानी

मेरा। अभी तो हाथ-गोड चलते हैं, गाँव नही तो आनगाँव, मेहनत-मजूरी करके अपना पेट पाल लूगी।"

बनवारी ने भड़क कर कहा, "तो फिर मुझे यहाँ क्यो बुलाया? जब घर मे ही एक राय नही है तो बाहर के झगड़े मैं कैसे सुलटाऊँगा? अम्मा तो जिद्दी है हो भैया, तुम भी अजब बात करते हो। तुमने यह सब पहले क्यों नही सोचा था? चौपाल मे अच्छा-भला भजन-कीर्तन होता था, क्यों बन्द हो जाने दिया? क्यो राजी हो गये कि खोल लो इसमें प्रौढ़-पाठशाला? क्यो बैठ जाने दिया शूद्रो और म्लेच्छो को अपने सिर पर? अब ठाकुर चोबसिह तुमको बन्दूक लेकर धमकाते हैं तो मैं क्या करूँ? यह तो सोचा होता कि गाँव मे हमारी हैसियत क्या है। ले-देकर कुल ढाई एकड़ जमीन है। नेतागीरी करके चोबसिह से टकरायेंगे तो किस बूते पर?"

"यही तो हम कहते हैं बनवारी, लेकिन कोई सुने तब न! हमने बलबीर को बहुत समझाया कि देखो भैया, आदमी को अपनी खाल मे रहना चाहिए। थोडा पढ़-लिख कर गंज के हाईस्कूल में मास्टर हो गये तो कोई लाट-गवन्नर नही बन गये हो। इतनी बड़ी जमीदारी के सामने तुम्हारी मास्टरी क्या चीज है? और हम कोई हरियाणा-पजाब के जाट तो हैं नही कि नेतागीरी में हमारा दखल हो। यहाँ तो कोई हमें क्षत्रिय मानने तक को तैयार नहीं। चाहे मुँह पर न कहे, या मौके पर अपना काम निकालने के लिए चाहे राजपूत कह कर थोड़ी इज्जत बख्श दें, पर पीठ पीछे शास्त्र बाँचते हुए कहते हैं कि जाटो का वर्ण क्या है? ब्राह्मण ये नहीं, क्षत्रिय ये नही, वैश्य ये नही, तो फिर ये क्या हैं? और शूद्र कहलाने से बचने के लिए हम क्या नही करते हैं! दूसरों से बढ़-चढ कर दान-पुन्न करते हैं, पुलिस-फौज मे भरती होते हैं, नौकरी-चाकरी मे आगे निकलने के लिए पेट काट कर पढ़ाई-लिखाई में जान खपाते हैं। मेरे जैसे अपढ़-गँवार और कुछ नही सूझता तो भजन-कीर्तन करके ही लाज बचाते हैं। सोचो मुझे बिहारीलाल की जगह भगतजी कहलाने की और तुझे बनवारीलाल की जगह जेटसाब कहलाने की कौन-सी जरूरत थी? लेकिन बलबीर को इस सबसे कुछ मतलब नहीं। सारा गाँव हमसे पूछता है—भगतजी, यह तुमने क्या किया? कीर्तन और सत्सग बन्द करके शूद्रों और म्लेच्छो को

स्कूल खोल दिया चौपाल मे ? पीठ पीछे हर कोई मूँछ मे मुस्कराता है और आँखें नचा कर पूछता है—जाट खुद क्या है ? लेकिन बलवीर को कुछ परवाह नही…"

"गंज से कब लौटता है ?"

"अब आता ही होगा।"

"तो मै बाहर चौपाल पर चल कर बैठता हूँ। यहाँ तो बडी उमस हो रही है।"

"चलो, तब तक मैं थोडी कुट्टी काट लू। तुम चल कर बैठो, पिंकिया चाय वही दे आयेगी।"

बनवारी बाहर निकल आया। बाहर थोडी हवा थी और शाम के झुटपुटे मे थोड़ी उजास बाकी थी। बरसात के बाद भरे ताल के किनारे मेढकों के टर्राने और पेड़ों पर चिड़ियों के चहकने मे होड लगी हुई थी। चौपाल के चबूतरे पर खड़ा पाकड का पेड़ भी गुंजान हो रहा था। बनवारी ने देखा, पाकड़ के गुद्दे बढ़-फैल कर चौपाल के छप्पर तक पहुँच गये है, जिससे छप्पर के नीचे घुप्प अंधेरा हो रहा है। डेढ़ साल पहले जब बलवीर को गोली लग जाने पर वह आया था तो तीन डालें कटवा गया था। अब वे फिर बढ़ गयी है। इसी तरह ठाकुर चोबसिंह से बलवीर का राजीनामा करा गया था, लेकिन इस बीच वह पुरानी खुस फिर बढ़ गयी है।

चबूतरे पर पुराना तख्त अब भी वैसे ही पडा था। बनवारी उस पर बैठ गया। थोडी देर बाद पिंकी आकर चाय दे गयी। चूल्हे पर बनी काली, कडवी-सी चाय। पिंकी के बिगड़े हुए नाम और चाय के बिगड़े हुए स्वाद पर वह एक साथ झल्ला उठा :

ये लोग हर चीज को बिगाड़ने पर ही तुले रहते हैं। कोई कुछ बनना चाहे, तो भी नही बनने देंगे। कहने को यही कहेगे कि तुम्हारी सारी उन्नति में हमारा खून-पसीना लगा है, लेकिन यह नही देखेंगे कि हमने इसकी टाँग पकड़कर पीछे घसीटने मे कोई कसर नही छोड़ी है। कच्ची उम्र से ही कडी मशक्कत करायी, अपने पशु चरवाये, उनका सानी-पानी और गोबर-कूडा कराया, जुताई-सिंचाई, निराई-कटाई—क्या नहीं कराया

इन्होंने मुझसे ? पढ़ने भेजा, पर इस तरह कि फीस वक्त पर नहीं आ रही है और बार-बार नाम कट रहा है और बोर्डिंग वाला महाराज पैसा न मिलने पर सब लड़कों के सामने जलील करके परोसी हुई थाली पर से उठा कर भगा रहा है। आज अपनी मेहनत और लियाकत से कुछ बन गया हूँ तो चैन से बैठने नहीं देते। जमीन में तीसरा हिस्सा मेरा भी है, लेकिन कभी एक दाना नहीं भेजते, उल्टे अपनी तंगी का रोना रोकर पैसा माँगते रहते हैं। जितना सभव होता है, भेज देता हूँ, लेकिन यहाँ यही कहा जाता है कि बनवरिया एक पैसा भी घर नहीं भेजता। एकदम गैर-जिम्मेदार है। लेकिन जरा कहीं कोई बात बिगड़ती दिखायी देती है तो सारी जिम्मेदारी मुझ पर डाल कर पीछे हट जाते हैं। आप भले बने रहते हैं, मुझे सबसे लड़-भिड़ कर बुरा बनना पड़ता है। दिन-रात यहाँ की चिंता लगी रहती है सो अलग। एक पाँव शहर में रहता है, दूसरा गाँव में। दिमाग वहाँ चलता है, दिल यहाँ धड़कता है। रहता दिल्ली में हूँ, जीना गाँव में पड़ता है। और अब तो यहाँ की लपटें वहाँ पहुँच कर मेरा घर फूकती दिखायी देती हैं। चौबसिंह ठीक कह रहे थे, यह बलबीरा मुझे तरक्की तो क्या करने देगा, मेरी नौकरी भी छुड़वायेगा। मैं तो कह दूंगा साफ-साफ कि भैया, तुझे नेतागीरी करनी है तो कर, मैं तेरे लिए ठाकुर चौबसिंह से बिगाड़ नहीं कर सकता।

चाय पीकर बनवारी कमर सीधी करने को तख्त पर लेटा तो सफर की थकान के कारण आँख लग गयी। इस बीच प्रौढ़-पाठशाला के छात्रों के बच्चे और नाती-पोते रोज की तरह वहाँ आ गये। तख्त पर बनवारी को लेटा देख वे सहम गये और कुछ देर आपस में खुसर-पुसर करते हुए चबूतरे के नीचे खड़े रहे। पिंकी भीतर से जलती हुई लालटेन लिये आयी तो उन्होंने आशंकित स्वरों में पूछा, "चेतना जीजी, आज पढ़ाई होगी ?"

"क्यों, पढ़ाई क्यों नहीं होगी ? चलो, सब लोग अपने-अपने काम पर।" पिंकी ने कहा तो उन सबमें उत्साह की लहर दौड़ गयी। शोर मचाते हुए वे सीढ़ियों से चढ़ने के बजाय यों ही उछल-उछल कर चबूतरे पर चढ़

गये। दो लड़कियाँ फुरती से चौपाल बुहारने लगीं। चार-पाँच लड़के खूंटियों पर लटकी लालटेनें उतार कर उनके शीशों पर जमी कालिख साफ करने लगे। बाकी यों ही दौड़-भाग कर आपस में धौल-धप्पा करने लगे।

बनवारी की आँख खुल गयी। पिंकी चाय का गिलास उठाने आयी तो उसने उठ कर बैठते हुए पूछा, "बलबीर चाचा आ गये पिंकी ?"

"अभी नहीं आये चच्चा, लेकिन मैं उनके सब ठिकानों पर कह आयी हूँ कि दिल्ली से बनवारी चच्चा आये हैं और चौपाल पर बैठे उनका इंतजार कर रहे हैं।"

अँधेरा घिर आया था और इतने सारे बच्चे न जाने कब आ गये थे। बनवारी ने देखा, तेरह-चौदह साल के दो लड़के चबूतरे पर चढे और उसकी ओर बेबाकी से देखते हुए चौपाल के कमरे के दरवाजे की तरफ बढ गये। चूलों-कब्जों से अलग हुए उढके किवाड़ों को हाथों से उठा-उठा कर उन्होंने इधर-उधर रखा और और भीतर घुस कर टाट-पट्टियाँ और मिट्टी के तेल का पीपा बाहर ले आये।

"क्या यह दरवाजा सारे दिन ऐसे ही उढका रहता है ?" बनवारी ने पिंकी से पूछा, "इसमें ताला नहीं लगता ?"

"नहीं, यह तो बहुत दिनों से ऐसा ही है।"

बनवारी पूछना चाहता था : और चोरी नहीं होती ? लेकिन पिंकी जाने लगी तो अचानक उसे रोक कर बोला, "सुन, तू क्या सोचती है ? क्या कहना चाहिए मुझे बलबीर से ?"

पिंकी खिलखिला कर हँस पड़ी, "मुझसे पूछ रहे हो चच्चा ? मैं तुमको बताऊँगी यह बात ?" लेकिन अगले ही क्षण यह भूल कर कि वह कुल तेरह साल की है, दादियों की तरह कहने लगी, "मुझे तो लगता है चच्चा, दादी बलबीर चच्चा का पक्ष लेती है सो ठीक ही लेती है। अम्मा और पप्पा बेकार मे डरते है। चोवसिंह कोई हौआ है जो हमे खा जायेंगे ? उनके पास बन्दूकें है, सो तो ठीक, पर यह तो देखो कि उनकी पाल्टी मे हैं कितने जने ? और बलबीर चच्चा की पाल्टी मे आधे से ज्यादा गाँव है। तभी तो चोवसिंह की सामने आकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं

पड़ती। पीछे से पप्पा को उकसाते रहते हैं। तुम्हारे पास दिल्ली भी शायद इसीलिए गये थे…"

"और चोवसिंह की पाल्टी के दूसरे लोगों का क्या रुख है?"

"उनका रुख क्या होगा चच्चा? बेपेंदी के लोटे हैं सब। इनके मुँह पर इनकी-सी, उनके मुँह पर उनकी-सी। बस, यह कह लो कि और सब जात के लोगों के खिलाफ बामन, बनिये और ठाकुर एक हो रहे हैं। वे नहीं चाहते कि दूसरा कोई पढ़े-लिखे। जानते हैं कि दूसरे पढ़ गये तो इनकी सारी पोल-पट्टी खोल देंगे। खोलने ही लगे हैं। और इसी बात की अड़ है। कुछ जोर तो चलता नहीं, सो मजाक उड़ाया करते हैं: काग पढाये पीजरा पढि गये चारों वेद, जब सुधि आयी कुटुम की तो रहे ढेढ के ढेढ। गाली देकर कहते हैं: पढ़-लिख के मनिस्टर बन जाओगे क्या? इकले-दुकले कोई मिल जायें तो धमकाते भी हैं: राजी-राजी मान जाओ, नहीं तो सारी पढ़ाई-लिखाई ऐसी-तैसी में घुसेड़ देंगे। लेकिन बलवीर चच्चा की बात सब लोगों ने गाँठ बाँध रखी है कि बामन-ठाकुर जो बकें सो बकने दो, चुपचाप सुन लो। बस, इतना याद रखो कि बिन विद्या नर पसू कहावै। इसीलिए अब तक कोई झगड़ा नहीं हुआ, नहीं तो अब तक जाने कितनी फौजदारियाँ हो गयी होतीं। लेकिन बामन ठाकुर फौजदारी करने पर उतारू हैं। बात यह है चच्चा, कि जबसे प्रौढ़-पाठशाला खुली है, बामनों का सीधा-सवैया कम हो गया है और ठाकुरों का दबदबा कम होता जा रहा है। ऊपर से चाहे कोई अब भी कुछ न बोले, पर मन में उनके लिए किसी के भी इज्जत नहीं रही है। दबी जबान से ही सही, लेकिन चोवसिंह के खेतों पर काम करने वाले मजदूरों ने सरकारी रेट की बातचीत शुरू कर दी है और मार-पीट, गाली-गुफ्तार के तो एकदम खिलाफ हो गये हैं। और ठीक भी है, मजूरी करते हैं, कोई आबरू थोड़े ही बेच खायी है…"

कोई और वक्त होता तो पिंकी की एक साथ इतनी सारी बक-बक बनवारी को शायद अच्छी न लगती, लेकिन इस समय वह आश्चर्य से उसका मुँह ताकता हुआ सब सुनता रहा। इतनी-सी लड़की इतना सब जानती है? पिंकी अभी शायद और भी बहुत कुछ कहना चाहती थी,

लेकिन तभी पंडित भूदेव शर्मा, ठाकुर नवाब सिंह और ठाकुर मलखान सिंह आ गये। बनवारी ने तीनों को जैहिंद की। पिंकी खाली गिलास उठा कर चली गयी।

वे तीनो लोहालगी लाठियाँ लिये हुए चबूतरे पर चढ आये और तख्त पर जम गये तो बनवारी को लगा, आज शायद यहाँ झगडा होकर रहेगा। बलवीर के आने से पहले ही ये लोग लाठियाँ ले-लेकर आ पहुँचे है। क्या पता, इनके पीछे-पीछे चोबसिंह भी बन्दूक लेकर आ रहे हों। बहाना बनवारी के हाल-चाल पूछने का है, लेकिन तैयारी प्रौढ-पाठशाला को जबर्दस्ती बन्द कराने की मालूम होती है।

बनवारी डर गया। लेकिन थोड़ी देर बाद उसकी नजर चौपाल के कमरे के दरवाजे की ओर गयी तो अचानक उसे लगा, ये ब्राह्मण-ठाकुर भी कम डरे हुए नही हैं। दरवाजा टूटा हुआ है। दोनों किवाड़ें चूलों पर से उतरी हुई हैं और साँकल-ताले के बिना हमेशा यों ही उढ़कायी हुई रहती हैं। भीतर प्रौढ-पाठशाला का सारा सामान रखा रहता है। इनमें जोर होता तो ये किसी भी समय उस सामान को निकाल कर फेंक सकते थे। कुछ नही तो रात-बिरात चोरी ही करवा देते, या चौपाल मे आग ही लगवा देते। क्या गाँव की दुश्मनियो मे ऐसा होता नही रहा है? फिर क्या बात है कि साल भर से पाठशाला चल रही है और ये लोग बक-बक करने के सिवा कुछ भी नही कर पाये?

बनवारी से बातें करते हुए तीनो लट्ठधारी लोग देखते रहे कि लड़के-बच्चे उनकी तरफ से बेखबर अपना काम कर रहे हैं। वे उन्हें पीपे में से तेल खीच कर लालटेनों में भरते देखते रहे। पाँचो लालटेनें जब तक जल नही गयी, उन्होंने कुछ नही कहा। शायद इस खयाल से कि रात को यहाँ काफी लोग जुटेंगे और काफी देर बैठना पड सकता है और रोशनी की जरूरत होगी। लेकिन ज्योंही लड़के लालटेनों को छप्पर के नीचे दीवारो मे लगी गज भर ऊँची कीलों पर इधर-उधर टाँग कर टाट-पट्टी झाड़ कर बिछाने लगे, ठाकुर मलखान सिंह ने उन्हें डाँट दिया, "भागो यहाँ से भैन के घोड़ो, अब यहाँ कोई पढाई-लिखाई नही होगी।"

लड़के सहम कर रुक गये। लेकिन भागे नही। उन्होंने बनवारी की

तरफ देखा, मानो चौपाल के मालिक से इस आदेश की पुष्टि चाहते हो। बनवारी घबरा गया। उसे लगा, झगडा यही से और अभी शुरू हो सकता है। उसने मलखान सिंह से कहा, "इनको अपना काम करने दो ठाकुर साहब, बलवीर अभी आता होगा, उसी से बात की जायेगी।"

लडको ने यह सुना और मुस्कराये। आँखो ही आँखों मे कुछ इशारे किये और अपना काम करने लगे। थोड़ी ही देर में सारी टाट-पट्टियाँ बिछ गयी। गुरुजी का मोढा और स्टूल यथास्थान रख दिया गया। श्यामपट दीवार के सहारे खडा कर दिया गया। सामूहिक पुस्तकें, स्लेटें और चाक-बत्तियाँ अन्दर से लाकर स्टूल पर करीने से रख दी गयी। तब तक लड़कियाँ खेंचू मे घड़ा भर लायी और इंटें रख कर बनायी गयी अस्थायी घिनौची पर उसे टिका कर न जाने किस बात पर खिलखिलाने लगी।

धीरे-धीरे पाठशाला के प्रौढ छात्र एक-एक दो-दो करके आने लगे और बाहर तख्त पर बैठे हुए लोगो को बन्दगी करके छप्पर के नीचे चुपचाप अपनी-अपनी जगह बैठने लगे। खिल-खिल हँसती लडकियों को उन्होंने डाँट कर उनके घर भेजा और लडको से कहा कि चुप बैठना हो तो बैठें, नही तो वे भी जायें। लेकिन लड़के क्यो जाते! वे उत्सुक और उत्तेजित थे। उन्हें लग रहा था, आज कुछ विशेष घटित होगा। उनमे से दो-चार तो इधर-उधर अच्छी तरह देख कर यह भी निश्चित कर चुके थे कि मौका पडने पर कहाँ से कौन-सी ईंट उठा कर चलायी जा सकती है। वे गाली देकर डाँटने वाले मलखान सिंह को रह-रह कर जलती हुई आँखो से देख लेते थे और जोर-जोर से सुना कर वही गाली आपस मे एक-दूसरे को देने लगते थे, जो मलखान सिंह ने अभी-अभी उन्हें दी थी।

इस बीच तख्त पर कुछ और लट्ठधारी आ बैठे थे और बातचीत बाकायदा प्रौढ़-पाठशाला के बारे मे शुरू हो गयी थी।

पंडित भूदेव शर्मा ने कहा "विद्या सुपात्र-कुपात्र देख कर दी जानी चाहिए। शूद्र हमारे यहाँ वेद के अधिकारी नहीं माने गये हैं। नये जमाने की नयी बात है, तो चलो मान लेते हैं कि शिक्षा सबको मिलनी चाहिए,

लेकिन यह तो देखना पड़ेगा कि शिक्षा कैसी हो। प्रौढ़-पाठशाला है तो प्रौढ़ों को इहलोक-परलोक सुधारने वाली धार्मिक शिक्षा दो, उन्हें हिन्दू संस्कृति के बारे में बताओ, उन्हें वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन करना सिखाओ। लेकिन यहाँ तो एकदम उल्टी बातें होती हैं। एक दिन हम यहाँ से जा रहे थे। कान में कुछ शब्द पड़े तो ठिठक गये। क्या सुनते हैं कि जमीन का मालिकाना हक क्या होता है, यह बताया जा रहा है। अरे भाई, पाठशाला तुमने यह बताने के लिए खोली है? शहर वालों को न मालूम हो तो उन्हें बताओ, गाँव वालों को यह बताओगे कि जमीन का मालिकाना हक क्या होता है? बतख के बच्चे को तैरना सिखाओगे? अरे, ज्यादा से ज्यादा रामायण बाँचना और चिट्ठी-पत्री लिखना सिखा दो और छुट्टी करो। सबों को कानूनदाँ बनाने का क्या मतलब?"

ठाकुर नवाब सिंह ने कहा, "हम तो भैया बनवारीलाल, यह मानते हैं कि जाट भी राजपूत होते हैं। मानी कि ठाकुरों की तरह क्षत्रिय। तो फिर जाटों के साथ जाटवों के बैठने का क्या काम? और मुसलमानों के साथ बैठने का भी क्या काम? मानी कि जाति और धर्म कुछ है ही नहीं? मानी कि अब शूद्र और म्लेच्छ हमारे सिर पर चढ कर बैठेंगे? इस तरह से तो कल को वे हमसे रोटी-बेटी की रिश्तेदारी भी माँगेंगे। मानी कि तुम सोचो, कल को दीना भंगी या फरीदा रंगरेज अपने लड़के का ब्याह तुम्हारी भतीजी पिंकिया से करने की बात करे तो तुमको कैसा लगेगा?"

बनवारी चुपचाप उन लोगों की बातों पर हाँ-हूँ करता रहा। गो कि वह उनसे काफी हद तक सहमत था और लगभग ये ही बातें बलबीर से कहने की सोच रहा था, लेकिन एक-दूसरे की लगाई-बुझाई करके दंगा-फसाद करा देने वाले इन लोगों के काँइयाँपन को भी वह जानता था। वह यह भी समझ रहा था कि ये लोग अभी तो बढ-चढ कर बोल रहे हैं, लेकिन बलबीर के आते ही या तो चुपचाप यहाँ से खिसक लेंगे, या इनकी बोलती बन्द हो जायेगी।

और हुआ भी यही। बलबीर को आते देख सब एकदम चुप हो गये। बलबीर ने अपनी साइकिल चबूतरे से टिकायी और बड़े प्रेम से बनवारी

के पैर छूकर गले मिला। हँसते हुए बोला, "अचानक आ टपके ? मालूम होता तो मैं जल्दी आ गया होता।"

"चलो कोई बात नहीं।" बनवारी ने कहा, "रात तो अपनी है।"

"क्या कल ही चले जाओगे ?"

"हाँ, कल ही जाना पड़ेगा। बहुत-से जरूरी काम छोड़ कर आया हूँ।" बलवीर को पास बिठा कर बनवारी ने सब लोगों को अपना महत्त्व जताते हुए कहा, "क्या बतायें भाई, दिल्ली बड़ा तेज शहर है। हम तो वहाँ यह जरा अच्छी नौकरी पाकर फँस गये। खर्चों और कर्जों में बढ़ते जाने की होड़-सी लगी रहती है और आमदनी बढती नहीं। इस नौकरी मे इज्जत तो बहुत है, लेकिन ऊपरी आमदनी बिल्कुल नही। और होती भी हो तो हम कर नही सकते। इसलिए तनखा के अलावा चार पैसे कमाने के लिए पचास धंधे करने पडते हैं। नौकरी छूट जाने का डर अलग लगा रहता है, इसलिए पचास लोगों से दुआ-सलाम बना कर रखनी पडती है..."

"अखबार ने पढा था, तुम्हारे विभाग मे आजकल बड़ा जबर्दस्त आन्दोलन चल रहा है। उसमें भी कुछ हिस्सा ले रहे हो या नहीं ?" बलवीर ने कुछ मुस्कराते हुए पूछा।

बनवारी चिढ गया। बोला, "मैं नही पड़ता ऐसे चक्करों मे। ये सब नेता लोगो के काम हैं, और शहर में नेतागीरी करना आसान नहीं है। मैं तुम्हारी तरह गाँव के अनपढ-मूरख लोगो के बीच नही, शहर के चतुर-चालाक लोगो के बीच रहता हूँ। वहाँ चार पैसे चालीस कैंचियों से कटने के बाद मिलते हैं। एक सीढी चढने के लिए सौ अडंगे पार करने पड़ते हैं। गाँव में क्या है, हर्रा लगे न फिटकरी, मुफ्त मे नेतागीरी की जा सकती है। दिल्ली में नौकरी-चाकरी करते हुए ऐसी प्रौढ-पाठशाला खोल कर देखो तो पता चले। इतनी जगह के लिए कम से कम हजार रुपये महीने तो किराये के देने पड़ें। ऊपर के खर्चे अलग। यहाँ क्या है ? मुफ्त की जगह मिली हुई है, सामान के लिए मजे में चंदावसूली चल रही होगी, और वक्त की तो कोई कमी यहाँ होती ही नही। न कोई कानूनी बंदिश है, न कोई राजनीतिक दबाव। खूब राजनीति करो।"

बात इतनी जल्दी और इस ढंग से मुद्दे पर आ जायेगी, यह किसी ने नही सोचा था। उपस्थित लोग चौकन्ने हो गये। लेकिन यह देख कर बनवारी को अजीब लगा कि बड़े भाई बिहारीलाल अभी एक मिनट पहले आकर बैठे थे और अभी बीडी-तमाखू का इतजाम करने के बहाने उठ कर चल दिये। समझ गया : ये खुद बलबीर से वैर बेसाहना नही चाहते, मेरे ही कधे पर रख कर बन्दूक चलायेंगे।

बनवारी की साफ बात सुन कर बलबीर ने भी आगा-पीछा नही किया। बोला, "दो टूक बात करो भैया! अगर तुम प्रौढ-पाठशाला बंद कराने आये हो, तब तो तुम्हे निराश लौटना पड़ेगा। पाठशाला अब बन गयी है, तो चलेगी, चाहे कही भी चले। हिस्सा-बाँट की बात करके चौपाल खाली कराने आये तो वैसा कहो। मैं अपने हिस्से की बात नही करता, लेकिन बड़े भैया और अम्मा से पूछ कर देख लो। वे आज यहाँ से हटने को कहें, हम अभी हट जाते हैं। लेकिन जब तक वे अपने मुंह से नहीं कहते, तब तक चाहे सारा गाँव कहता रहे, हम यहाँ से हिलने वाले नहीं है।"

"तुम समझते हो, मैं अपने आप चला आया हूँ? भैया ने चिट्ठी लिख कर बुलाया है!" बनवारी तैश मे आ गया।

"भैया ने यह लिखा है कि तुम बलबीर से चौपाल खाली कराने चले आओ?"

"यही समझ लो।"

"समझ क्यों लूं? जो बात उन्होंने लिखी है सो बताओ।"

बनवारी उलझ गया, लेकिन इस तरह चुप हुआ, जैसे गुस्से के मारे चुप हो।

"खैर छोड़ो, उन्होंने जो लिखा होगा, मैं जानता हूँ।" बलबीर ने मुस्कराते हुए कहा, "तुम अपनी बताओ, तुम क्या चाहते हो?"

बनवारी बिगड़ती हुई बात बनाने के लिए बोला, "मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारी इस पाठशाला से फायदा क्या है? गाँव मे तनाव बढाने के सिवा इससे तुम क्या हासिल कर रहे हो? गाँव मे फूट और लडाई के बीज

बोने से क्या फायदा है? लोग सदियों से जिस तरह मिल-जुल कर जीते आये है, उसी तरह उन्हें जीने दो।"

"लेकिन लोगों से तो पूछ कर देखो, वे उसी तरह जीना चाहते हैं?" बलवीर ने कहा, "लोग सदियो से जिस तरह जीते आये हैं, उसी तरह अब और नही जीना चाहते। लेकिन किसी और तरह से कैसे जियें, यह इन्हें नही मालूम। दूसरो से पूछते हैं तो कोई इन्हें भगवान के भरोसे चुपचाप बैठे रहने को कह देता है, कोई भाग्य के सहारे सब कुछ सह जाने के लिए। कोई इन्हें काँगरेस का तख्ता पलट कर जनता पार्टी या लोकदल के हाथ मजबूत करने का उपदेश पिलाता है, तो कोई काँगरेस से ही आस लगाये रखने की बात करता है। इधर कुछ लोग यहाँ रजनीश और साईं बाबा के भक्त भी बन गये हैं और गुलाबी-गेरए वस्त्र पहन कर गले में अपने-अपने भगवानो के पेंडुलम लटकाये घूमते हैं। वे भी पढ़े-लिखे हैं और अनपढो को ज्ञान देते रहते हैं। लेकिन सबका कहना एक ही है: तुम्हारे हाथ मे कुछ नही है, तुम कुछ नही कर सकते। तुम्हारी समस्याएँ हल करने कोई ऊपर वाला ही आयेगा। चाहे लखनऊ और दिल्ली से आये, चाहे पूना और शीरडी से, चाहे किसी और बैकुंठ धाम से! लेकिन ये अनपढ़ गरीब लोग अब ऊपर वालो से निराश हो चुके हैं और खुद ही कुछ कर गुजरना चाहते हैं। इसलिए क्या कुछ किया जा सकता है, यह जानना इनकी जरूरत है और यह पाठशाला इनकी इस जरूरत को पूरा करने का एक माध्यम है।"

"लेकिन यह तो सोचो कि इससे तुम गाँव वालों मे घृणा और असंतोष फैला रहे हो। गाँव मे तनाव पैदा कर रहे हो। क्या तुम यह चाहते हो कि हमारे गाँव मे भी वही सब हो, जो बिहार वगैरह के गाँवों में हो रहा है? कल को यहाँ भी सवर्णो और हरिजनों का या हिन्दुओं और मुसलमानो का झगड़ा शुरू हो गया तो? जो चीज इस गाँव में कभी नही हुई, अब क्यों हो? और हम लोगों के हाथों क्यों हो?"

"हाँ, यही तो हम भी कहते है···" ब्राह्मण-ठाकुर एक साथ बोल उठे।

"लेकिन हमे भी कुछ कहना है···हम भी कुछ कह सकते हैं···" प्रौढ़-

पाठशाला के छप्पर के नीचे से एकदम दो आवाजें सुनायी दीं और चार-पाँच लोग उठ कर तख्त की तरफ आते दिखायी पड़े।

ब्राह्मण-ठाकुर लाठियाँ लेकर खड़े हो गये। एक क्षण की भी देर हो जाती तो शायद वे प्रौढ़-पाठशाला में पढ़ने वालों पर टूट पड़ते, लेकिन बलवीर एकदम उछल कर बीच में आ गया और अपने प्रौढ़ शिष्यों से बोला, "तुम लोग चुप हो जाओ। यहाँ कोई लडाई नहीं, आपस की बात-चीत हो रही है। तुम लोग उधर चलकर बैठो, मैं अभी आ रहा हूँ।"

"हाँ-हाँ, चलो, चलो।" पिंकी न जाने कहाँ से एकदम प्रकट हो गयी और उन लोगों को ठेल-खींच कर छप्पर के नीचे ले जाने लगी।

फिर बलवीर ने हाथ जोड़ कर ब्राह्मण-ठाकुरों से कहा, "बुरा न मानें तो आप लोग भी इस वक्त यहाँ से चले जायें। यह हमारा घरेलू मामला है, जैसे भी होगा, सुलट लेंगे।"

बलवीर के प्रौढ़ शिष्य तो छप्पर के नीचे जाकर बैठ गये, लेकिन ब्राह्मण-ठाकुर अड़ने लगे। कहने लगे, "यह हमारा अपमान है। हम कोई कुत्ते हैं कि जाटों की चौपाल से हमें भगाया जा रहा है? बनवरिया देख-सुन रहा है और बोल नहीं रहा। भैंचो···दिल्ली में क्या रहने लगे, दिमाग ही खराब हो गये। बिहरिया कहाँ है? उसको बुलाओ। उसकी महतारी को बुलाओ। वे दोनों कहें, तभी हम यहाँ से जायेंगे।"

अम्मा पाकड़ के पीछे खड़ी चुपचाप सब सुन रही थी। यह सुन कर सामने आ गयी और चिल्ला कर बोली, "हाँ-हाँ, मैं कह रही हूँ, जाओ तुम सब यहाँ से। तुम्हारा दिया हुआ खाते हैं जो धौंस देते हो? जाओ, पेट भर के लगाई-बुझाई करो उसके पास जाके, जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है। और कह देना, वह नीचे तक का जोर लगा ले, पाठशाला चलेगी और यहीं चलेगी। अपना काम पड़ता है तो राजपूत-राजपूत करते हुए आते हो, नहीं तो हम तुम्हारे लिए नीच-कमीन हैं। सीधा-सवैया देते रहो, दान-दक्षिणा डालते रहो, गमी-शादी में इनकी फौज को खिलाते रहो, कसूर-बेकसूर इनकी पचायत के डाँड भरते रहो, तब तो ठीक, लेकिन जब हमारी गरज पड़ेगी तो कोई चिरी उँगली पर मूतने नहीं आयेगा।"

अम्मा का चंडी रूप देख कर वे लोग चिल्लाते-भुनभुनाते धमकियाँ देते हुए चले गये : देख लेंगे, गाँव में रहना भुला देंगे, एक-एक को भूनकर रख देंगे···

उनके जाने के बाद बलवीर ने बनवारी से कहा, "देख लिया भैया? तुम दिल्ली के कानूनी और राजनीतिक दबावों की बात कर रहे थे। दिल्ली में सही काम करने पर कानूनी बंदिशें होंगी, मैं मानता हूं, लेकिन वहाँ कानून कभी-कभार लोगों की रक्षा भी कर लेता होगा। मगर यहाँ कानून पुलिस-कचहरी के रास्ते बाद में आता है, पहले तो लट्ठ बन कर सीधा सिर पर पड़ता है या गोली बन कर सीधा सीने पर लगता है। मुझे किस तरह गोली मारी गयी थी, यह तुम पिछली बार आकर अपनी आँखों से देख गये थे। क्या कसूर था मेरा? और तब तक तो यह पाठशाला भी नहीं खुली थी! सिर्फ इस बात पर मैं गोली मारने के काबिल समझ लिया गया कि गाँव के लोगों को प्रलय का डर दिखा कर बेवकूफ बनाने वाले उस ढोंगी सत्संगी से उलझ पड़ा था, जो यहीं, इसी तख्त पर बैठ कर महायज्ञ के नाम पर लोगों से ढाई हजार का चंदा वसूल करके अपनी अंटी गरम कर लेना चाहता था। गोली कंधे में लगी और ठीक-ठाक निकल गयी इसलिए बच गया, नहीं तो मर भी सकता था। मेरे आदमी मरने-मारने पर उतारू थे, लेकिन तुमने बीच में पड़ कर चोबसिंह से राजीनामा करा दिया, इसलिए मैंने ही उन्हें रोका। तब बोलो, मैं नफरत फैला रहा हूँ कि नफरत का शिकार हूँ? तुम आश्वासन दे गये थे कि चोबसिंह मामले की पूरी जाँच करायेंगे और गोली चलाने वाले को जरूर पकड़वायेंगे, लेकिन आज तक कुछ हुआ? सब जानते हैं कि गोली किसने मारी थी, लेकिन वह आज तक नहीं पकड़ा गया। यह देख कर असंतोष मुझे होना चाहिए कि मैं असंतोष फैला रहा हूँ? और अभी-अभी तुमने देखा? तनाव कौन बढ़ा रहा था?

ब्राह्मण-ठाकुर लोगों के चले जाने के बाद बलवीर के प्रौढ़ शिष्य छप्पर के नीचे से निकल कर तख्त के आस-पास आ खड़े हुए थे। अम्मा

तख्त पर आकर जम गयी थी और पिंकी भी उसके पास बैठी हुई थी। बिहारीलाल भी आकर चुपचाप तख्त के एक कोने पर सिर झुका कर बैठ गये थे। तभी बलवीर की भौजी चीखते-चिल्लाते बच्चों को जबर्दस्ती घसीटती हुई लायी और उन्हें बलवीर के सामने धकेल कर जोर से चिल्लायी, "इन्हें जहर दे दो। ये दूसरों के हाथों मरें, इससे अच्छा है कि तुम अपने हाथों से इनका टेंटुआ मसक दो।"

बलवीर ने लपक कर सबसे छोटे बच्चे को गोद में उठा लिया। बाकी दो को पिंकी ने उठकर सँभाला। सब लोग सकते मे आ गये। बनवारी केवल उठकर खड़ा ही हो पाया। बिहारीलाल ने एक बार चौंक कर सिर उठाया और फिर पहले से भी ज्यादा झुका कर बैठे रहे। केवल अम्मा बैठे-बैठे चिल्लायी, "यह क्या है ब्याहुली ? दूसरों का गुस्सा बालकों पर क्यों उतार रही है ? तेरे ही बालक अनोखे है कि चोबसिंह इन्हें मार डालेगा ? इन लोगों को देख, इनके क्या बाल-बच्चे नही हैं ?

"और तुम पर कोई आँच आयेगी तो हम क्या हाथ पर हाथ धरे देखते रहेंगे ?" अब तक चुप बलवीर के प्रौढ़ शिष्यों मे से किसी ने कहा और फिर एक समवेत स्वर उठा, "हाँ, और क्या ? हम लोगों ने क्या चूड़ियाँ पहन रखी है ? बहू, तुम इन बालको को लेकर घर जाओ। कोई इनको उँगली भी छुएगा तो उसके हाथ काट देंगे हम। तुमने हमें समझ क्या रखा है ?"

बलवीर ने रोते हुए बच्चे को चुप कराया और बोला, "भौजी, डरने की कोई बात नही है। जो बन्दूक तुम्हें डरा रही है, उसका निशाना सिर्फ तुम्हारी तरफ नही है। और तुम यह भी मत सोचो कि तुम अपना मुँह उसकी तरफ कर लोगी तो बच जाओगी। अगर तुम यह सोचती हो कि पाठशाला यहाँ से हट जायेगी या बन्द कर दी जायेगी तो खतरा टल जायेगा, तो यह बात भी नही है। पाठशाला तो अब एक बहाना है, लड़ाई अब इससे आगे जा चुकी है। उन लोगों को एक बहाना नहीं मिलेगा, तो वे दूसरा ढूढ लेंगे। इसलिए डरो मत, हौसला रखो और तुम भी लड़ने को तैयार रहो।"

अचानक जाने क्या हुआ कि भौजी बलवीर का कंधा पकड़ कर जोर

से चिल्ला कर रो पडी। हिचकियों में टूटते शब्दों मे उसने कहा, "तुम समझते होगे लाला, मैं तुम्हारी दुश्मन हूँ। पर मैं दुश्मन नही हूँ। मैं तो इन बालको की खातिर..."

"घबराओ मत भौजी, हम लोगों के रहते बालको को, भैया को, तुमको, अम्मा को किसी को कुछ नही होगा। जाओ, इन्हें ले जाओ।" कहते हुए बलवीर ने बच्चे को भौजी की गोद में दे दिया और इशारे से अम्मा से कहा कि वह भौजी को घर लें जाये।

अम्मा भौजी और बच्चों को लेकर चली गयी। थोड़ी देर सभी लोग एक साथ बोलते रहे। भौजी के नाटक ने पहले सबको स्तम्भित और फिर उत्तेजित कर दिया था। लेकिन उस शोर में दो व्यक्ति बिल्कुल चुप बैठे रहे · बिहारीलाल और बनवारीलाल।

थोडी देर बाद बनवारी उठ कर खडा हुआ। बोला, "इसका मतलब यह हुआ कि मैं बेकार ही आया।"

"लेकिन अब चले कहाँ? इस वक्त?" बलवीर ने पूछा।

"जरा ठाकुर चोबसिंह के पास जाऊँगा। मेरे पास दिल्ली आकर उन्होने एक काम बताया था, उसी के बारे में कुछ बात करनी है उनसे।"

बलवीर के पास बैठी हुई पिंकी ने बलवीर के कान में कुछ कहा और बलवीर मुस्करा दिया। बनवारी ने यह देखा और उसकी त्योरियाँ चढ गयी।

"चेतना कह रही है, चोबसिंह बोतल खोल कर बैठे तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं।"

बलवीर के मुँह से यह सुन कर बनवारी बौखला गया। कुछ कहने और न कह पाने की स्थिति में गुस्से से फड़कते हुए उसके होंठो से इतना ही निकला, "कौन चेतना?"

बलवीर ने हँस कर कहा, "यही तुम्हारी पिंकी। मैने इसका नाम चेतना रख दिया है। और यह झूठ कभी नही बोलती। जाओ, चोबसिंह सचमुच बोतल खोल कर बैठे तुम्हारा इन्तजार कर रहे होंगे।"

'कथन', नवबर-दिसम्बर, १६८०

तिलताड़मल

डॉ० तिलताड़मल की शादी मथुरा से ही हुई थी लेकिन वे नौकरी दिल्ली में करते थे। नौकरी नयी-नयी थी, लम्बी छुट्टी मिलना मुश्किल था, इसलिए वे हनीमून के लिए पत्नी को दिल्ली ही ले आये। वे एक औद्योगिक क्षेत्र में स्थित कालेज में पढ़ाते थे और कालेज के पास ही एक कमरा किराये पर लेकर रहते थे। वहाँ रहने वाले मजदूर और क्लर्कनुमा लोग बहुत सभ्य नहीं थे, इसलिए जब वे स्वय से एक फुट ऊँची पत्नी के साथ पहली बार मुहल्ले में आये तो उन्हें कुछ ऐसे जुमले सुनने पड़े जिन्हें एक दृष्टि से शुद्ध विनोदपूर्ण और दूसरी दृष्टि से घोर अपमानजनक कहा जा सकता था।

पत्नी उनसे शादी करके वैसे भी अधिक प्रसन्न नहीं थी, उनका रहन-सहन देख कर और भी कुढ़ गयी। एक तो मुहल्ला ऐसा, उसमे भी रहने के लिए मात्र एक कमरा, और कमरे में भी क्या? जमीन पर बिछे बिस्तर, खूँटी पर टँगे कुछ कपड़े, अल्मारी मे रखी कुछ किताबों के अलावा सामान के नाम पर कुछ था तो केवल एक स्टोव, कुछ बरतन, आटे का कनस्तर और एक स्टूल।

लेकिन कमरे में पाँव रखते ही पत्नी का ध्यान सबसे पहले लोहे के उस पाइप की ओर आकृष्ट हुआ जो आमने-सामने की दीवारों मे सूराख करके फँसाया हुआ था। उसे लगा, शायद यह कपड़े वगैरह टाँगने के लिए है। मगर ज्यों ही वह अपने कपड़े उस पर टाँगने लगी, तिलताड़मल चिल्ला उठे, "नहीं-नहीं, इस पर नहीं। यह तो हमारी साधना का अवलम्ब है।"

पत्नी कुछ समझी नही तो उन्होंने तेजी से जूते-कपड़े उतारे और कच्छा-बनियान में उछलते हुए कोने में रखा स्टूल उठा लाये। स्टूल पर चढ़े, पाइप को दोनों हाथों से पकडा, पैर सिकोड़े, कलाबाजी खायी और घुटनों के नीचे पाइप दबा कर उस पर उल्टे लटक गये। पैर ऊपर, सिर नीचे, ढीले-झूलते हाथ और भी नीचे।

"यह कद बढाने की कसरत है। मैं नित्य इसका अभ्यास करता हूँ। मैंने यह अभ्यास दो मिनट की अवधि से शुरू किया था और अब सवा दो घंटे तक इस तरह आराम से लटका रह सकता हूँ। जब मैं तीन घण्टे एक साथ लटके रहने का अभ्यास पूरा कर लूँगा तब यह साधना पूर्ण होगी।"

"तब ?" अचानक उनका यह करतब देख हक्की-बक्की पत्नी ने असमंजस में पूछा।

"तब !" तिलताडमल आनन्दपूर्वक हँसे और उल्टे लटके-लटके ही बोले, "तब एक चमत्कार होगा। एक क्राति होगी। हम महान हो जायेंगे। सारी दुनिया हमारे दर्शनो के लिए उमड़ पडेगी। भक्तों की भीड लग जायेगी। अखबारो के संवाददाता दौड पड़ेंगे। फोटोग्राफरो में हमारे चित्र लेने और पत्रकारों मे हमारे इटरव्यू लेने की होड मच जायेगी। दुनिया भर के अखबार हमारा सचित्र जीवन-परिचय और साधना-प्रक्रिया सम्बन्धी अनुभव छापने के लिए माँगेंगे। हमारे द्वारा और हमारे बारे मे लिखी हुई पुस्तकें ससार की समस्त भाषाओ मे करोडो की सख्या में बिकेंगी। रायल्टी और पुरस्कारो के पैसे की वर्षा होने लगेगी। हम पर रिसर्चें होंगी, हम पर फिल्मे बनेंगी। अनेक सस्थाएँ हमे मानद उपाधियाँ प्रदान करेंगी। हो सकता है, शिवकात शर्मा की तरह राज्यसभा में मनोनीत होकर हम संसद-सदस्य भी बन जायें। और फिर सर्वत्र स्वागत, सम्मान, विदेश-यात्राएँ और धन इतना कि मजा ही मजा…"

पत्नी को हँसी आ गयी। बोली, "मजाक मत कीजिए। नीचे उतरिए और यह बताइए कि इस कमरे मे हम रहेंगे कैसे ? मुझे यहाँ लाने से पहले कुछ तैयारी तो आपको कर लेनी चाहिए थी। न कोई सामान है न…आप नीचे उतर कर सामान लेने जाइए, मैं सफाई करती हूँ।"

"पर मैं तो अब कसरत पूरी करने से पहले नीचे नही उतर सकता ।"

"उतर आइए । प्लीज ! आपको इस तरह लटके देख कर मुझे वड़ा अजीब लग रहा है ।"

"आपको सफाई वगैरह जो करनी है, आप कीजिए, पर मैं तो अपना अभ्यास पूरा करके ही उतरूँगा । शादी के चक्कर मे पाँच दिन से एक मिनट भी नही कर पाया हूँ । इस कसर को पूरा करने के लिए अब मुझे सुबह-शाम दोनो समय अभ्यास करना होगा ।"

"आप बिल्कुल चमगादड लग रहे है ।"

"परवाह नही, मुझे साधना पूर्ण करनी है ।"

"पर इसमे हो क्या जायेगा ?" पत्नी झुँझला गयी ।

"मेरा कद वढ जायेगा । जितना चाहूँगा उतना ।"

"छोडिए, इस तरह कोई कद नही वढ़ा करते ।" पत्नी ने कहा, लेकिन वह नयी-नयी थी और शालीनता की मर्यादा मे रहना चाहती थी, इसलिए वात को सहज वना कर वोली, "मुझे तो आप ऐसे ही पसन्द हैं । नौकरी आपको मिल ही गयी है, शादी भी आपकी हो ही गयी, अब और किसलिए अपना कद वढाना है आपको ?"

"बस, वढाना है । कह दिया न, आप अपना काम कीजिए ।"

"बताइए न !" पत्नी अव भी उनके उल्टे लटकने के करतव को मजाक समझ रही थी, इसलिए कुछ इठला कर बोली ।

"अब क्या बताऊँ आपको !" तिलताडमल ने कहा और बताने लगे, "देखिए, मुझमें ज्ञान है, शक्ति है, योग्यता है, प्रतिभा है । लेकिन कद छोटा होने के कारण सव जगह मेरा निरादर होता है । कालेज में लडके मुझ पर हँसते है । नौकरी भी तब मिली है जब दो मित्रो ने सिफारिश लगायी कि इनके कद पर न जाइए, बड़े योग्य व्यक्ति है । अगर मैं किसी रईस का बेटा होता या फिर आप ही पन्द्रह हजार की जगह पन्द्रह लाख का दहेज ले आती, तो मुझे कोई चिन्ता न होती । मेरे पास अपने शरीर के अलावा कोई पूँजी नही है, और यह पूँजी कितनी कम है, आप देख ही रही है। मैं इसे बढ़ाना चाहता हूँ, और आप देखिएगा, मैं वढा लूँगा फिर मैं सव सालों को देख लूँगा ।"

"लेकिन आपके साले तो आपकी बड़ी इज्जत करते हैं।" पत्नी ने पुनः हँस कर वातावरण को सहज बनाना चाहा।

लेकिन तिलताड़मल चिढ़ कर बोले, "मैं उन सालों की नहीं, उन सालों की बात कर रहा हूँ जो मुझे छोटा समझते हैं।"

"कद छोटा होने से कुछ नहीं होता, आदमी के काम बड़े हो तो छोटे कद का आदमी भी बड़ा बन सकता है।"

"नहीं देवीजी, नहीं। आप इस दुनिया को नहीं जानतीं। इस दुनिया में काम को कोई नहीं देखता, सब यह देखते हैं कि आदमी कितना ऊँचा है।"

"लेकिन आदमी अपने कद से बड़ा कैसे हो सकता है?"

"मैं दिखा दूँगा।"

पत्नी को लगा, इस आदमी से बहस करना बेकार है। उसने अपना आँचल कमर में लपेटा और कमरे की सफाई में जुट गयी।

"सुनिए, इधर आइए।" तिलताड़मल ने पत्नी को पास बुलाया और कहा, "जरा सोचिए आप, चार फुट पौने सात इंच का आदमी जब पाँच, सात, दस या बारह फुट का होकर समाज में विचरण करेगा तो क्या होगा? तहलका मच जायेगा मीराजी, तहलका। और वही तहलका मैं मचा देना चाहता हूँ।"

उन्हें उल्टे लटके दस मिनट से ऊपर हो गये थे और वे सारी बातचीत अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कर रहे थे, इसलिए पत्नी को लगा, यह मजाक नहीं है। हो सकता है, कसरत से कद सचमुच ही बढ़ जाता हो। और इनका कद बढ़ जाये तो अच्छा ही है। शादी पर सब चिढ़ा रहे थे कि मीरा का दूल्हा तो बिल्कुल बौना है। सीढ़ी लगा कर मीरा को प्यार करेगा। अम्मा तो बहुत नाराज थी, लेकिन बाबूजी का आग्रह था कि कद से कुछ नहीं होता, लडका बडा होनहार है...

पत्नी का पिता बेचारा ठीक ही कहता था। उसने खूब देख-भाल कर ही अपनी बेटी का हाथ तिलताडमल के हाथ में दिया था। उसने देखा था कि लडका पढा-लिखा है और खूब चतुर-चालाक भी है। पिता के रिटायर होने के बाद मिले पैसे से उसने मथुरा में शानदार मकान बनवाया

है। नक्शा पास कराने के लिए किसको कितनी रिश्वत देनी पड़ती है, ब्लैक में सस्ता सीमेंट जल्दी से जल्दी कहाँ से मिल सकता है, राज-मजदूर न्यूनतम मजदूरी पर कहाँ से लाये जा सकते हैं, यह सब जानता है। इन सब धन्धों के साथ एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ा भी रहा है, पी-एच० डी० भी कर रहा है, कविता भी लिखता है, और लैक्चररशिप पाने की तिकड़म के लिए आगरा, कानपुर, लखनऊ, बरेली और दिल्ली के चक्कर भी लगाता रहता है। दहेज के मामले में भी चौकस रहा। साफ बोला कि पन्द्रह हजार में एक पाई कम नहीं लेगा, सो भी इस शर्त पर कि दहेज लेने की बात किसी को बतायी नहीं जायेगी। और यह भी लड़के की समझदारी का ही नमूना था कि उसने अपना खर्च बचाने के लिए बरात और बैंड-बाजे से रहित आदर्श विवाह पर जोर दिया और दिल्ली के अपने प्रगतिशील दोस्तों पर यह रौब भी गालिब कर लिया कि वह बड़े ही प्रगतिशील विचारों का आदर्शवादी युवक है।

फिर भी पत्नी ने आश्वस्त होने के लिए पूछा, "अच्छा, सच-सच बताइए, इससे वाकई कद बढ़ जाता है?"

"नहीं तो क्या हम उल्लू के पट्ठे हैं जो बरसों से उल्टे लटक रहे हैं?"

पत्नी को इस अभद्र उत्तर की आशा नहीं थी। फिर भी यथासंभव संयत रहते हुए उसने कहा, "नाराज क्यों होते हैं, मैंने तो इसलिए पूछ लिया कि आप खुद को कम्युनिस्ट कहते हैं। मैंने सुना है, वे लोग ऐसी साधनाओं में विश्वास नहीं करते।"

"कम्युनिस्टों के बारे में आप क्या जानती हैं?" तिलताड़मल ने गुस्से में कलाबाजी खायी और पाइप पर पूरा एक चक्कर घूम कर पूर्ववत लटकते हुए बोले, "आप कुछ नहीं जानती। कम्युनिस्ट इस देश में अभी पैदा ही नहीं हुए। हुए हों तो बताइए? है कोई एक भी मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्टालिन, माओ, मिन्ह, चे या कास्त्रो के कद का कम्युनिस्ट? सब बौने हैं। बौना होना कोई बुरी बात नहीं। लेकिन अपने कद से ऊपर उठने की इच्छा तो होनी चाहिए।"

पत्नी कम्युनिस्टों के बारे में ज्यादा नहीं जानती थी। डाँट खाकर चुप हो गयी और कमरे की सफाई करने लगी। तभी उसे कमरे के बन्द

दरवाजे के बाहर चूड़ियों की खनक और फुसफुसाहट सुनायी पड़ी और वह दरवाजा खोल कर पड़ोस की उन स्त्रियों का परिचय प्राप्त करने लगी जो उससे अपनापा जताने और यह कहने आयी थी कि उसे किसी चीज की जरूरत हो तो उनसे माँग लेने में सकोच न करे।

लेकिन साधनारत तिलताड़मल का दिमाग कम्युनिस्टो की चर्चा से गरम हो उठा था। सयोग से उनके कालेज मे, और उनके ही विभाग मे, दो आदमी खुद को कम्युनिस्ट मानते थे। विभागाध्यक्ष पंडित और प्राध्यापक विपिन विहारी। इण्टरव्यू से पहले तिलताडमल को यह जानकारी मिली तो पंडित को खुश करने के लिए उन्हे मार्क्सवाद का कुछ अध्ययन कर लेना जरूरी लगा। अपने प्रगतिशील लेखक मित्र रामकिशोर से पूछ कर वे कुछ किताबे दिल्ली से खरीद कर मथुरा ले गये और उनमे से एमिल बर्न्स की पुस्तक 'मार्क्सवाद क्या है?' पढ़ते ही उन्हे महसूस होने लगा कि वे मार्क्सवादी हो गये है। अचानक उन्होंने अपने चारों ओर क्राति ही क्रांति दिखायी देने लगी। उन दिनों वे मथुरा मे अपना मकान बनवा रहे थे और कमेरो पर नजर रखने के लिए नीम के नीचे मार्क्सवाद पढ़ा करते थे। उन दिनों वे कई बार इस ख्याल से चिंतित हो जाते कि क्राति हो गयी तो इस मकान का क्या होगा? कहीं ऐसा न हो कि इसे सार्वजनिक सम्पत्ति कह कर उनसे छीन लिया जाये। लेकिन अगले क्षण ही वे सोच लेते कि समाजवाद इतना निर्दय नही हो सकता कि एक क्रातिकारी से उसका मकान ही छीन ले। और उस समय तक वे कोई मामूली क्रांतिकारी नही, महान क्रांतिकारी नेता बन चुके होंगे। क्रांति के स्वर्ण-मन्दिर पर तब उनका नाम कोटि-कोटि किरणो से आलोकित हो रहा होगा···बहरहाल, उनका इण्टरव्यू अच्छा हुआ था। लेखक मित्र रामकिशोर विभागाध्यक्ष पंडित का मित्र था और उसने पंडित से सिफारिश भी कर दी थी और पंडित ने सिलेक्शन कमेटी को कन्विन्स करने में कोई कसर नही छोडी थी···

मगर नियुक्ति के बाद एक ऐसी घटना घटी कि कम्युनिस्टो से तिलताड़मल का मोहभग हो गया। हुआ यह कि उन्ही दिनों कालेज के पास ही एक फैक्टरी में मजदूरों और फैक्टरी-गार्डों के बीच झगड़ा हो गया।

पहले मामूली मारपीट हुई, फिर एक गार्ड ने गोली चला दी। जिससे दो मजदूर मारे गये। इससे मजदूर बौखला गये और उन्होंने फैक्टरी में आग लगा दी। तीन गार्डों को जिंदा आग मे झोंक दिया। कालेज के स्टाफ-रूम में इस घटना पर चर्चा चल रही थी और इस बात पर विचार हो रहा था कि मजदूरों ने यह उचित किया अथवा अनुचित। पण्डित और विपिन विहारी इसे उचित मान रहे थे और अन्य लोग इसका विरोध कर रहे थे। तिलताड़मल को लगा, पण्डित और विपिन विहारी गलत बात कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "लेकिन पण्डितजी, गार्ड बेचारे का इसमें क्या दोष था? मजदूर हगामा करेंगे तो उसे गोली चलानी ही पड़ेगी। वह तो बेचारा अपनी ड्यूटी पूरी कर रहा था।" पण्डित ने कहा, "वह बेचारा नही, गुडा है तिलताडमलजी! उसे यहाँ के सब लोग अच्छी तरह जानते है।" इस पर विपिन विहारी ने तिलताड़मल से पूछा, "आप उसे नहीं जानते? वह भी तो मथुरा का ही है।" पता चला कि गोली चलाने वाला गार्ड मथुरा का पहलवान रवीन्द्र शर्मा है। तिलताडमल उसे जानते थे। बोले, "मगर वह तो यहाँ मजदूरी करता था और सुना था कि वह मजदूरो का लीडर भी बन गया है।" पण्डित ने बताया, "हाँ, वह था तो मजदूर ही शुरू मे बडा तेज-तर्रार आदमी था और मजदूर-यूनियन के अन्दर जल्दी ही उसकी गिनती लीडरों मे होने लगी थी। लेकिन जल्दी ही मालिको के हाथ बिक गया। गार्ड बन गया और गुंडई करने लगा। गार्ड बन कर वह बिल्कुल ही बदल गया। मजदूरों को डराने-धमकाने से लेकर उन पर डण्डा चलाने, उनकी हडताल तोड़ने और मालिकों की रक्षा के लिए उन पर गोली चलाने तक का काम करने लगा।"

तिलताड़मल को यह सुन कर रवीन्द्र शर्मा से बड़ी नफरत हुई और वो वे उससे अपने परिचय को कलंकित होने से बचाने के लिए उससे मिलने व्यग्र हो उठे। रवीद्र शर्मा गिरफ्तार हुआ था, लेकिन मालिकों की कृपा से जमानत पर छूट कर आ गया था। तिलताड़मल उससे मिलने पहुँचे। सोचा, यदि मार्क्सवाद सर्वहारा की दुहाई देकर पहलवान का हृदय-परिवर्तन कर दें तो क्या ही अच्छा हो। क्रांति में उनका यह एक महत्त्व-पूर्ण सकारात्मक योगदान होगा। कालेज में प.डत और विपिन विहारी

प्रसन्न हो जायेंगे और बाहर रामकिशोर जैसे प्रगतिशील लेखक मित्र। लेकिन रवींद्र शर्मा तिलताड़मल की लताड़ खाकर बेशर्मी के साथ हँसता रहा और बाद मे सलाह देता हुआ बोला, "देखो प्रोफेसर साब, तुम भी मथुरा के हो और हम भी मथुरा के है, इसलिए तुमको एक सलाह दें है : यह अपना कम्युनिस्टपना छोड़ो, इससे कुछ फायदा नही। यह मथुरा नही, दिल्ली है। खामखा मारे जाओगे। हमारी मानो, अपने चैन से नौकरी करो, ब्याह-शादी करो, कही जमीन लेकर अपना मकान बनवाओ। इन लफड़ों मे क्या रखा है। और यह सोचो कि अभी तुम हो क्या ? चार किताबें पढ़कर कम्युनिस्ट बन गये। अरे हमसे पूछो, हम तो नेता भी बन गये थे, लेकिन इमरजेंसी में हमने समझ लिया कि मालिकों की मुखालफत करना खतरनाक है और उससे कोई फायदा भी नही है। इस देश के कम्युनिस्ट साले सब बौने और बेईमान हैं। इनके चक्करमें पड़े तो ये तुमको अपना गुलाम बना लेंगे। तुम जिंदगी भर काम करते रहोगे और वे नेता बने रहेंगे। हमारे साथ यही तो हुआ। कल को तुम्हारे साथ भी यही होगा। इसलिए हमारी बात मानो…"

तिलताड़मल स्वय भी कुछ दिनों से ऐसा ही महसूस कर रहे थे। इस बीच उन्होंने कई धुआँधार क्रांतिकारी कविताएँ लिखी थीं और संपादकों में मिल-जुलकर छपवा भी ली थीं, लेकिन उन्हें दुख था कि उनका उचित मूल्यांकन नही हो रहा है। कालेज में पंडित ओर बिपिन बिहारी का रवैया भी उनके प्रति अजीब था। वे दोनों उन्हे मार्क्सवाद का गंभीर अध्ययन करने की सलाह देते और अध्यापकों के आंदोलन में सक्रिय होने के लिए कहते। अक्सर वे उन्हें किसी न किसी मीटिंग, जुलूस या प्रदर्शन में चलने के लिए कहते और वे उसमें न जा पाते तो उनका मजाक उड़ाते। इसलिए पहलवान रवींद्र शर्मा की बातें सुनकर उन्हें लगा, और तो सब साले मुझे काँटों मे घसीटना चाहते हैं, यह एक आदमी मिला जो मेरा सच्चा शुभचिंतक है। रही उसकी गुंडई, तो उसमें वह क्या कर सकता है ? नौकरी तो नौकरी है, उसे अपनी ड्यूटी बजानी ही पड़ेगी। पुलिस और फौज वालों को भी तो यही करना पड़ता है।

इस प्रकार तिलताड़मल ने रवींद्र शर्मा का हृदय-परिवर्तन करने का

विचार त्याग दिया और उससे कहा, "गुरु, बात तो तुम्हारी ठीक है, पर क्या बतायें, हम तो इस कालेज मे आकर कम्युनिस्टो से घिर गये है। साले हर वक्त उँगली करते रहते है।"

"मारो सालो को।" पहलवान ने सलाह दी।

"हम?" तिलताडमल ने अपनी काया की ओर दीनतापूर्वक सकेत करते हुए कहा।

"कसरत किया करो।" पहलवान ने दीक्षा देते हुए कहा, "अखाड़े मे नही जा सकते तो घर मे ही योगसाधना किया करो। स्वामी पाखडानद ब्रह्मचारी की एक किताब निकली है 'वैज्ञानिक योगाभ्यास'। उसका अध्ययन करो। उसमे कद बढाने की भी कई कसरते दी हुई है।"

तिलताडमल प्रसन्न हो गये। उसी दिन 'वैज्ञानिक योगाभ्यास' खरीद लाये और अगले दिन लोहे का एक पुराना मगर मोटा और मजबूत पाइप तथा एक ऊँचा स्टूल ले आये। पडोस के मजदूर को बुलाकर जिन्होंने पाइप कमरे की दीवारों मे फिट कराया और पढने के लिए केवल वैज्ञानिक योगाभ्यास की पुस्तक नीचे रखकर बाकी सब पुस्तकें स्टूल पर चढ कर अलमारी के सबसे ऊपर वाले खाने में सजाकर रख दी, जैसे कोई विद्यार्थी नयी कक्षा में आकर पिछली कक्षा की पुस्तकों को अलग उठाकर रख देता है। पाइप पर उल्टे लटक कर कद बढ़ाने की मशक्कत के साथ-साथ उन्होंने कालेज में पडित और बिपिन बिहारी से नफरत करना भी शुरू कर दिया। एकाएक उनकी दिलचस्पी उन प्राध्यापकों में हो गयी जो हमेशा प्लाट खरीदने और मकान बनवाने की बातें किया करते थे।

लेकिन पत्नी को यह सब पता नही था। उसने सोचा था, [illegible] छोटे कद का है तो क्या हुआ, पढ़ा-लिखा है, लैक्चरर है, [illegible] लेखक है, दिल्ली में अकेला रहता है, खूब प्यार करेगा। [illegible] और खुद मे ऊँची तथा सुदर पत्नी का प्रभाव भी रहेगा, [illegible] घुमाने ले जायेगा, दिल्ली-दर्शन करायेगा, सिनेमा [illegible] अच्छे प्रेम-गीत लिख कर मुझे सुनाया करेगा। [illegible] ऐसा कुढन ही मिला। तिलताड़मल सुबह दो-ढाई [illegible]

जाते और लौटते ही फिर दो-ढाई घंटे के लिए उल्टे लटक जाते पत्नी को घर का ही नहीं, बाजार से सामान-सट्टा लाने का काम भी करना पड़ता। दुखी होकर कभी शिकायत कर बैठती तो तिलताड़मल गुस्से में दहाड़ने लगते, "आप चाहती हैं, मैं साधना न करूं ? इतना छोटा ही रह जाऊँ ? क्या आप यह चाहती हैं, कि मैं साधारण लोगों की तरह दूध, साग-भाजी और राशन-चीनी लाने के लिए दौड़ता फिरूँ ? घंटों बेकार बैठकर आपके साथ प्रेमालाप करूँ ? आपके साथ शॉपिंग करने और सिनेमा देखने जाऊँ ?"

"दुनिया में सब लोग ये काम करते हैं।" पत्नी दलील पेश करती।

"दुनिया में तो सब लोग बेवकूफ हैं तो मैं भी हो जाऊँ ?" तिलताड़मल चिल्लाते। वे शुरू से ही पत्नी के पिता को, और उस पिता की पुत्री होने के कारण पत्नी को भी, प्रतिक्रियावादी कहा करते थे, सो ऐसे अवसरों पर वे कहते, "समझ में नहीं आता कि आप कैसी प्रतिक्रियावादी हैं। प्रतिक्रियावादी का ध्यान तो हमेशा अपने फायदे पर रहता है, और आप हैं कि हमेशा नुकसान की सोचती हैं। सोचिए, मैं साधना नहीं करूँगा तो आपका कितना नुकसान होगा। आप एक महान व्यक्ति की पत्नी बनने से रह जायेंगी।"

और पत्नी की समझ में न आता कि यह आदमी, जिसे उसके पिता इतना चतुर-चालाक मानते हैं, इतना मूर्ख क्यों है।

आखिर एक दिन तिलताड़मल की साधना पूर्ण हो ही गयी। वे पूरे तीन घंटे, पाँच मिनट और सत्रह सेकंड उल्टे लटके रहे। इसके बाद 'या-हूँ' की विचित्र चीख के साथ उन्होंने लोहे के पाइप पर कई कलाबाजियां खायीं और नीचे उतर आये।

वह सुबह का समय था और पत्नी अभी सो रही थी। तिलताड़मल ने उसे झकझोर कर जगाया, "मीराजी, उठिए, देखिए।"

"क्या है ?" पत्नी आँख मलती हुई बोली।

"मेरा कद ! देखिए, मैं कितना बड़ा हो गया हूँ।" तिलताड़मल कच्छा-

चनियान पहने तनकर खड़े थे और प्रसन्नता के आवेश में कांप रहे थे।

"कहाँ ? मुझे तो उतने के उतने ही लग रहे है।"

"यह कैसे हो सकता है ! पूरे तीन घंटे, पांच मिनट, सत्रह सेकंड। साधना पूर्ण !" तिलताड़मल ने हाँफते हुए कहा, "आप उठिए, जरा इंच-टेप लाकर नापिए तो।"

पत्नी ने आँखें तरेर कर देखा, झुंझला कर कुछ कहने वाली थी, लेकिन यह सोच कर कि शायद कुछ हो ही गया हो, चुप रह गयी। उठी और सिलाई की मशीन में से इंचटेप निकाल लायी। तिलताड़मल और भी तनकर खड़े हो गये। पत्नी ने इंचटेप का एक सिरा पैर के अँगूठे से दबाकर उनकी ऊँचाई नापी। वही चार फुट पौने सात इंच। बोली, "आपको वहम हो गया है। कहीं कोई फर्क नहीं है।"

"कहीं कोई फर्क नहीं ?" तिलताड़मल की जान निकल गयी मगर तुरंत ही वे भड़क उठे, "मैं नहीं मान सकता। आप ठीक से नापिए, नहीं तो मैं यह समझूंगा कि आप वाकई प्रतिक्रियावादी हैं।"

पत्नी ने फिर नापा और इंचटेप के उस निशान को तर्जनी और अँगूठे के बीच दबाकर तिलताड़मल के आगे कर दिया। तिलताड़मल ने देखा और झपटकर इंचटेप पत्नी के हाथ से छीन लिया। पैंसिल लाओ। वे चिल्लाये और खुद ही पेंसिल खोजने लगे। नीचे कहीं नहीं मिली तो स्टूल पर चढ गये और अलमारी के ऊपर वाले खाने में रखी मार्क्सवाद की किताबें नीचे गिराते हुए पेंसिल का एक छोटा-सा टुकड़ा खोजने में सफल हो गये। नीचे उतरकर उन्होंने पत्नी की सहायता से दीवार पर इंचटेप और पैंसिल से एक पैमाना बनाया। फिर तन कर स्वयं दीवार से सटकर खड़े हो गये और बोले, "अब देखो।"

"अब भी उतना ही है।" पत्नी ने उनका कद नापा और हँस पड़ी। चटाक् !

तिलताड़मल ने उछल कर पत्नी के गाल पर जोर से चाँटा मारा और चिल्लाये, "झूठ बोलती है हरामजादी। मैं कह रहा हूँ कि मेरी साधना पूर्ण हो गयी है, मेरा कद बढ़ गया है, और तू हँसती है। तेरे बाप ने तुझे यही सिखाया है ? दूर हो जा मेरी नजरों के सामने से। उल्लू की पट्ठी !"

पत्नी की इच्छा हुई कि तिलताड़मल का मुँह नोचकर उनके मुँह पर थूके और कमरा खोलकर बाहर निकल जाये, फिर कभी इस आदमी का मुंह न देखे, लेकिन वह रोती हुई उस कोने में जा बैठी जहां खाना बनता था। सामने स्टोव रखा था और उसकी इच्छा हो रही थी कि स्टोव का तेल अपने ऊपर उँडेल कर माचिस लगा ले।

उधर तिलताड़मल कमरे में चक्कर काटते हुए चिल्ला रहे थे, "साली का इचटेप ही खराब है। जो भी चीज साथ लायी है, सब खराब। घडी खराब, पंखा खराब, सिलाई की मशीन खराब, खुद का दिमाग खराब, मैं अपना इचटेप लाऊँगा और उससे नापकर तुझसे पूछूँगा कि मेरी ऊँचाई क्या है। नालायक !"

अचानक उन्होंने कपडे पहने, आईने में अपना जायजा लिया और हिकारत से पत्नी की ओर देखते हुए बाहर निकल गये।

पडोस मे कुछ ही दूर पर मजदूरों के बीच काम करने वाले एक कामरेड रहते थे जो तिलताड़मल को एक प्रगतिशील बुद्धिजीवी के रूप मे जानते थे और फुरसत के समय जब-तब मिलने आ जाते थे। कभी-कभी चंदा या और कोई सहयोग माँगने भी आते। तिलताडमल चंदा और सहयोग तो नही देते थे, लेकिन सलाह-मशविरा खुल कर दिया करते। वे कामरेड की पार्टी-लाइन मे खूब मीन-मेख निकालते और नेताओं की नासमझी पर धाराप्रवाह बोलने के बाद शिकायत करते कि इस देश के कम्युनिस्ट इसलिए पिछड़े हुए हैं कि वे साहित्य-संस्कृति से कोई वास्ता नही रखते। कहते, "कवि अपना खून जलाकर कविता लिखता है और आपको उसकी परवाह ही नही। क्रांतिकारी कविताओं का एक संकलन तक नही छपवा सकते आप ! अरे, आप लोग तो इतने है, पार्टी की हर यूनिट एक-एक प्रति भी खरीदे तो एक कविता-संकलन का बाईस सौ का पहला सस्करण एक बार में ही बिक जाया करे !" कामरेड उनके सुझावों पर मुस्करा दिया करते थे और उनका मुस्कराना तिलताडमल को जहर लगता था। फिर भी कामरेड उनके लिए बडे उपयोगी जीव थे, क्योंकि उनसे मजदूर आंदोलन के बारे मे सुनी हुई बातें कालेज में अपने सहकर्मियों को सुना कर वे यह धाक जमाते थे कि वे आंदोलन से गहरे जुड़े हुए हैं

और दूसरी तरफ कुछ पढ़ी-सुनी बातें कामरेड को सुना कर यह रोब डालते कि क्रांति की सही लाइन भारत की किसी पार्टी के पास नहीं, केवल तिलताड़मल के दिमाग में है, और कितने खेद की बात है कि कोई पार्टी सूझ-बूझ का उपयोग करना नहीं चाहती है। कामरेड ध्यान से उनकी बातें सुनते, मगर मानते नहीं थे, और इससे क्षुब्ध तिलताड़मल पीठ पीछे उन्हें खूब गालियाँ दिया करते थे।

लेकिन उस दिन तिलताड़मल बहुत प्रसन्न होकर कामरेड के पास पहुँचे। कामरेड कंधे पर झोला लटकाये कहीं जाने के लिए निकल रहे थे, और जल्दी में थे, लेकिन तिलताड़मल ने उन्हें रोक लिया। उनके ऐन सामने तन कर खड़े होते हुए बोले, "कहिए कामरेड, क्या देखते हैं?" कामरेड समझे नहीं तो उन्होंने समझाया, "देखिए, कल तक मेरी यह कमीज यहाँ तक आती थी, आज कितनी ऊँची लग रही है। पैंट भी देखिए कल तक जूते की हाई हील मोहरी में छिपी रहती थी, आज एकदम साफ बाहर निकली दिखाई दे रही है। हाथ भी लंबे हो गये हैं। आस्तीन देखिए, कलाई का गट्टा ही नहीं घड़ी तक बाहर निकल गयी है। क्या कहते हैं?"

कामरेड समझ गये। वे तिलताड़मल की कद बढ़ाने की कसरत के बारे में जानते थे और कभी-कभी उन्हें 'चमगादड़ी' कह कर उनका मजाक भी उड़ाया करते थे। लेकिन इस समय वे जल्दी में थे और बहस में पड़ना नहीं चाहते थे, इसलिए पिंड छुड़ाने के लिए, उन्होंने कहा, "लगता है, कसरत से आपको फायदा हो रहा है।"

"हो रहा है न?" तिलताड़मल खुशी से उछल पड़े "मैं कहता था न! आप मेरा मजाक उड़ाते थे, लेकिन आखिर मैंने अपना कद बढ़ा ही लिया न!"

"अच्छा, फिर मिलेंगे!" कह कर कामरेड ने हाथ मिलाया और चल दिये! तिलताड़मल वहीं खड़े-खड़े खुशी से उछलने लगे।

फिर तो उनका वह सारा दिन मित्रों-अमित्रों, परिचितों-अपरिचितों, सहकर्मियों और असह्य कर्मियों के पास जा-जाकर इस चमत्कारपूर्ण घटना का वर्णन और अपने कद-कपड़ों का प्रदर्शन करते बीता। लोग

मान रहे हैं, यह देखना तो दूर, उन्हें इसकी भी चिंता नहीं रही कि लोग सुन भी रहे हैं या नहीं।

घर लौटे तो बेहद खुश थे। उसी खुशी मे उन्होंने पत्नी से सुबह के अपने अभद्र व्यवहार के लिए क्षमा-याचना की और इतना प्यार किया जितना शादी के बाद अभी तक नहीं किया था। और प्यार के उन्ही क्षणों मे उन्होंने पत्नी को बताया कि अब वे कल से ही अपनी इस क्रांतिकारी उपलब्धि के बारे में एक किताब लिखना शुरू करेंगे।

पत्नी को लगा, शायद अब एक नया पागलपन शुरू होने वाला है, लेकिन शादी के बाद उसे पहली बार प्यार मिल रहा था, इसलिए कुछ बोली नही। उसे संदेह भी हुआ कि सुबह तिलताड़मल का कद नापने मे कही उससे गलती तो नही हो गयी थी? फिर वह यह सोच कर शांतिपूर्वक सो गयी कि दिन में छह घंटे उल्टे लटकने के बजाय किताब लिखते हुए तिलताड़मल कम से कम आदमी जैसे तो लगेंगे।

तिलताड़मल का खयाल था कि उनके चमत्कार की चर्चा रातोंरात सारी दुनिया में फैल जायेगी और उनकी पुस्तक प्रकाशित करने के इच्छुक प्रकाशकों की भीड़ उनके दरवाजे पर लग जायेगी। पत्नी को उन्होंने समझा दिया था कि यदि उनकी अनुपस्थिति में प्रकाशक आयें तो वह उनसे बहुत होशियारी से बात करे और अपनी तरफ से कोई वादा न करे। कह दे कि अनुबंध तिलताड़मलजी स्वयं करेंगे। लेकिन पुस्तक छह महीने के अथक परिश्रम के बाद लिखी जा चुकी, आसपास के समस्त धैर्यवान लोगों को पढ़-पढ़ कर सुनायी भी जा चुकी, फिर भी कोई प्रकाशक उनके दरवाजे पर नहीं फटका।

तिलताड़मल चिंतित हो उठे। स्वयं ही प्रकाशकों के पास दौड़-दौड़ कर जाने लगे। मगर उन्हें यह देख कर बड़ा क्षोभ हुआ कि प्रकाशक तो बड़े जड़बुद्धि और बेईमान हैं। आवभगत करने के बजाय निहायत बेअदबी मे पेश आते हैं और पुस्तक देखे बिना ही कहते हैं कि इतना-इतना पैसा दे जाइए तब पुस्तक छापेंगे। लेने के देने पड़ जाने का मुहावरा तिलताड़मल को पहली बार समझ मे आया। वे क्षुब्ध हो उठे और उस देश को गालियां देने लगे जो उनकी अद्भुत चमत्कारी प्रतिभा का

अनुमान कर रहा था। पत्र-पत्रिकाओं के कार्यालयों में गये कि शायद कोई संपादक उनके चित्र और परिचय के साथ उनका इंटरव्यू अथवा उनके महान कृतित्व का समाचार छाप दे। लेकिन उन्हें लगा, व्यावसायिक पत्रों के संपादक तो बदनाम हैं ही, स्वयं को प्रगतिशील और जनवादी कहने वाले संपादक उनसे भी ज्यादा बदनाम हैं। कोई साला उनकी बातों को गंभीरतापूर्वक ही नहीं लेता। कमबख्त हँसने लगते हैं दाँत-फाड़ कर !

अन्ततः उन्हें अपनी पुस्तक स्वयं प्रकाशित करने के लिए चिन्तित होना पड़ा। पत्नी ने, घर वालों ने, सम्बन्धियों ने, मित्रों ने और सहधर्मियों ने उन्हें बहुत समझाया कि ऐसी मूर्खता करने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन यह सलाह देने वाले सब लोग तिलताड़मल को अपने दुश्मन मालूम हुए और वे कहने लगे : सब साले मुझसे जलते हैं, कोई मेरी उन्नति नहीं देख सकता। यह सुन कर उनके प्रगतिशील लेखक मित्र रामकिशोर ने कहा, "तिलताड़मलजी, यह खयाल अपने मन से निकाल दीजिए कि दुनिया आपकी दुश्मन है। छपवानी ही है तो कोई ऐसी पुस्तक लिख कर छपवाइए जो जनता को जीवन की वास्तविकताएँ बताये। चमत्कारों के चक्कर में डाल कर आप जनता को गुमराह क्यों करना चाहते हैं ?"

"जनता को गुमराह मैं करना चाहता हूँ कि आप कर रहे हैं ?" तिलताड़मल उबल पड़े और प्रगतिशील लेखन तथा कम्युनिस्ट राजनीति को गालियाँ देने लगे। रामकिशोर पर गालियों का प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने पैंतरा बदल कर समझाते हुए कहा, "बन्धुवर, आप समझ नहीं रहे हैं। मैं योग के चमत्कार की बात करके दरअसल मार्क्सवाद और समाजवाद की ही बात करना चाहता हूँ। लेकिन मैंने तरीका जरा अलग सोचा है। देखिए, अपने देश की जनता चमत्कार चाहती है। न चाहती तो भजनीश भगवान रजनीश कैसे बन जाते ? भोगेश्वर महर्षि योगेश्वर कैसे बन जाते ? पाखंडी जी स्वामी पाखंडानन्द ब्रह्मचारी कैसे बन जाते ? ये लोग जनता को बेवकूफ बना कर प्रतिक्रियावादी विचारों का प्रचार कर सकते हैं तो हम प्रगतिशील विचारों के प्रचार के लिए योगाभ्यास की बात करके जनता को बेवकूफ क्यों नहीं बना सकते ?"

रामकिशोर हँसने लगा। यह देख कर तिलताड़मल भड़क गये और बोले, "जब ऐसे-ऐसे लोग अवतार और भगवान बन सकते हैं तो मैं क्यों नहीं ?"

"लेकिन इसके लिए आपको या तो सरकारी सन्त बनना पड़ेगा या सी०आइ०ए० का एजेंट।" रामकिशोर ने मजाक में कहा, "और सरकार या सी०आइ०ए० की कृपा आप पर हो गयी तो आपको अपनी पुस्तक खुद छपवाने की जहमत नही उठानी पड़ेगी। बढ़िया आर्ट पेपर पर आफसेट से रंगीन चित्रों सहित छपेगी और करोड़ों लोगों में बेची-बाँटी जायेगी।"

तिलताड़मल को रामकिशोर की यह बात अपने काम की लगी और वे इतने उत्तम सुझाव के लिए उसे धन्यवाद देकर घर लौट आये। पत्नी को उन्होंने सारी बात बतायी और कहा, "अच्छा आप बताइए, सरकारी सन्त बनना अच्छा रहेगा या सी०आइ०ए० का एजेंट ?" पत्नी इस विषय में कुछ नही जानती थी और दिन-रात पुस्तक-चर्चा से ऊब चुकी थी। उसने कहा, "देख लो, जैसा तुम्हें ठीक लगे।"

तिलताड़मल ने रात को देर तक इस समस्या पर विचार किया और यह सोच कर कि दरिद्र देश भारत की सरकार का सन्त बनने से दुनिया के सबसे समृद्ध देश की सरकार का एजेंट बनना ज्यादा फायदेमन्द होगा, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हे सी०आइ०ए० का एजेंट ही बनना चाहिए।

दूसरे दिन कालेज में अपने विभागाध्यक्ष पंडित से उन्होंने पूछा, "पंडितजी, यह बताइए कि सी०आइ०ए० का एजेंट बनने के लिए लोगों को क्या करना पड़ता है ?"

पंडित ने बात का मर्म न समझ कर हलके ढंग से कह दिया, "वह जिसे अपना एजेंट बनाना चाहती है, खुद खोज कर बना लेती है।" फिर कुछ सोच कर जोड़ा, "आप जिस रास्ते पर चल रहे हैं, बहुत सम्भव है कि वह आपको उस तक पहुँचा दे।"

"पर मुझे पता कैसे चलेगा कि मैं वहाँ तक पहुँच गया हूँ ?"

"जिस दिन देश-विदेश का सारा बुर्जुआ प्रेस आपको उछालने लगे और आपके ऊपर धन की वर्षा होने लगे, समझ जाइएगा।" पंडित ने मजाक मे हँसते हुए कहा।

लेकिन तिलताड़मल गम्भीर थे। घर आकर उन्होंने पत्नी को बताया कि अब किसी भी दिन धन की वर्षा शुरू होने वाली है। लेकिन पत्नी चिढ़ गयी। बोली, "हो भी जाये तो मुझे क्या मिलना है? मेरे दहेज का पन्द्रह हजार रुपया डकार गये और शादी को साल भर होने आया, एक नयी साड़ी तक नही दिलाई। रहने के लिए भी वही एक कमरे का दडबा। वेतन का एक पैसा कभी मेरे हाथ पर लाकर नही रखा। आधे से ज्यादा जाकर घर दे आते है और यहाँ मुझे एक-एक चीज के लिए किलसना पडता है। दूसरे लैक्चरार भी तो हैं। सब अच्छा खाते-पहनते हैं, इज्जत से रहते हैं, और यहाँ किसी को बुलाने-बिठाने की जगह तक नही।"

"समझने की कोशिश कीजिए मीराजी।" तिलताड़मल ने बड़े करुण स्वर मे कहा, "आपसे क्या छिपा है? मकान बनाने मे जो कर्ज हम लोगो पर चढा है, उसका आधा भी तो आपके यहाँ से मिले पन्द्रह हजार देकर नहीं चुका। घर में बड़ा मैं ही हूँ मुझे ही चुकाना है। और कुछ पैसा अपने भविष्य के लिए भी बचा कर रखना है। नौकरी दिल्ली मे करनी है तो दिल्ली में अपना मकान भी होना चाहिए। मैं उसके लिए भी चिंतित हूँ।"

"चिंतित हैं तो कुछ ऊपरी आमदनी का जुगाड़ कीजिए, आप तो अपनी किताब के चक्कर मे ही पागल हो रहे हैं।"

"अरे मीराजी, आप समझ नही रही है। यह ऊपरी आमदनी का ही जुगाड कर रहा हूँ मैं। आप देखती जाइए, इस किताब से ही हमारे दिन बहुरेंगे।"

लेकिन कई दिन गुजर गये, तिलताड़मल को न तो प्रेस ने उछालना शुरू किया और न उनके ऊपर धन की वर्षा होनी शुरू हुई। उधर मथुरा से उनके पिताजी का पत्र आया कि छोटी बहिन सयानी हो गयी है और अब उसका विवाह जल्दी ही हो जाना चाहिए। मतलब पच्चीस-तीस हजार का इन्तजाम करो।

पत्र पढ़ कर तिलताड़मल को लगा, उनका बढ़ा हुआ कद छोटा हो रहा है और वे फिर चार फुट पौने सात इंच के रह गये है। वे सिर पकड़ कर बैठ गये और रोने लगे।

पत्नी ने सात्वना देते हुए कहा, "जी छोटा मत करो जी। बहिनजी के लिए कोई कम्युनिस्ट लड़का देख लो। सुना है, वे लोग दहेज वगैरह नहीं माँगते है।"

"नही-नही।" तिलताड़मल ने सुबकते हुए कहा, "ले-देकर मेरी एक तो बहिन है, उसे भी कुएँ में ढकेल दें, यह मुझसे नही हो सकता। कम्युनिस्टो के यहाँ तो वह भी कम्युनिस्ट बन जायेगी। तबाह हो जायेगी, बरबाद हो जायेगी। हम लोगो की इज्जत भी मिट्टी में मिल जायेगी। उसकी शादी धूमधाम से नही हुई तो लोग क्या कहेगे ?"

"तो फिर ?"

पत्नी के इस प्रश्न का कोई उत्तर तिलताड़मल के पास नही था। रात को वे भोजन किये बिना सो गये और देर तक प्रार्थना करते रहे - 'हे माता सी०आइ०ए०, तुम जहाँ भी हो, मेरी पुकार सुन लो और चली आओ। मुझ पर कृपा करो।'

आश्चर्य की बात कि रात को स्वप्न में उन्हे माता सी०आइ०ए० के दर्शन हो गये। एक हाथ मे डालर की थैली और दूसरे मे न्यूट्रान बम हिलाती वे सामने आयी और बोली, "रे मूर्ख, मैं तुझ जैसे पिद्दी पर कृपा करूंगी ? मैं अपना एजेंट सिर्फ उन्ही को बनाती हूँ जो तुझ जैसे मूर्ख नहीं, वास्तव में चतुर-चालाक होते हैं। तुझमें तो इतनी भी होशियारी नही कि अपनी किताब ही छपवा लेता।" और इतना कह कर वे अन्तर्धान हो गयी।

सुबह होते ही तिलताड़मल ने पत्नी से कहा, "सुनिए, आप अपने पिताजी से तीन-चार हजार रुपया कर्ज ले सकती हैं ?"

"क्यो ?"

"सोचता हूँ, पुस्तक खुद ही छपवा लूं। जब तक पुस्तक नही छपेगी, कोई मुझे जानेगा नहीं और जानेगा नही तो सरकार या सी०आइ०ए० मुझे कैसे खोजेगी ? थोडा रिस्क लेकर देखते हैं। और कुछ न भी हुआ तो किताब तो बिकेगी ही। मैंने हिसाब लगा लिया है, कम से कम पचास हजार का शुद्ध लाभ हो सकता है।"

"इतना ?" पत्नी की आँखें आश्चर्य से फैल गयी।

"हाँ। दो हजार मेरे पास है, तीन हजार तुम ले आओ। पाँच हजार में एक हजार प्रतियाँ मजे में छप जायेंगी। प्रकाशक आजकल लागत से बीस गुनी ज्यादा कीमत रखते हैं। हम भी पुस्तक का मूल्य सौ रुपये रखेंगे। एक लाख का माल तैयार होगा। पचास परसेंट कमीशन पर भी देवें तो नकद पचास हजार।"

पत्नी प्रभावित हो गयी और उसने अपने पिता के पास जाकर तिलताड़मल की योजना का ऐसा प्रभावशाली वर्णन किया कि दामाद की क्षमताओं पर पहले से ही पूरा भरोसा रखने वाले उसके पिता ने, जिसे ईंटों की दलाली में उन्ही दिनों पैंतीस हजार रुपया मिला था, तीन हजार रुपये निकाल कर देने में जरा भी आनाकानी नही की।

और महीने भर बाद ही तिलताडमल का वह छोटा-सा कमरा 'वैज्ञानिक योग प्रकाशन' का गोदाम और कार्यालय बन गया।

लेकिन छपवाना जितना आसान था। उसे बेचना उतना ही मुश्किल। कमरे के बाहर किताब की खूबियों का विज्ञापन करने वाला पोस्टरनुमा साइनबोर्ड लगा देने पर भी कोई उसका ग्राहक नही आया। कालेज में अपने विभागाध्यक्ष से कह-सुन कर पुस्तकालय को एक प्रति तिलताड़मल ने अवश्य बेच ली, मगर बाकी सब प्रतियाँ उनकी छाती का बोझ बन कर पड़ी रही। वे किताबों से भरा थैला कन्धे पर लटका कर घर से निकलते, कालेज में और कालेज के बाहर हर किसी को किताब दिखाते, उसकी उपयोगिता का वर्णन करते और उसकी प्रामाणिकता को प्रमाणित करने के लिए कहते, "देखिए, योग-साधना करने से पहले मेरा अपना कद चार फुट पौने सात इंच हुआ करता था और आज मेरा कद बारह फुट है। आप भी आजमा कर देखें, आपके जीवन मे भी यह क्रांति हो जायेगी।" लेकिन प्रत्येक सम्भावित ग्राहक तिलताडमल का कद देख कर बिदक जाता, जो उसकी नजर में साढे चार फुट मे ज्यादा न होता।

एक दिन तो नयी दिल्ली की एक महिला ने यह सुन कर कि तिल-ताड़मल ही उस पुस्तक के लेखक है, पुस्तक उनके मुँह पर दे मारी और

निहायत नफीस अंग्रेजी मे बोली, "धोखेबाज ! ठहर मैं तुझे अभी पुलिस के हवाले करती हूँ।"

तिलताडमल वहाँ से भागे और घर आकर ही दम लिया। पत्नी से बोले, "मीराजी, आपका क्या विचार है, क्या मेरा कद सचमुच नही बढ़ा है ? जरा ठीक से नाप कर बताइए तो।"

"अपना इचटेप ले आओ और खुद नाप कर देख लो।" पत्नी ने कुढ़ कर कहा, "मेरे पास तो मेरा ही इचटेप है।"

पत्नी जब से अपने पिता से तीन हजार रुपये ले आयी थी, बहुत नकचढ़ी हो गयी थी और बात-बात पर तिलताड़मल को डाँट दिया करती थी। अब वह उन्हे 'आप' के बजाय 'तुम' कहने लगी थी और उसके स्वर से लगता ऐसा था जैसे 'तू' कह रही हो।

तिलताडमल को लगा, साधना मे शायद कोई कमी रह गयी। उन्होंने फिर से लोहे के पाइप पर उल्टे लटक कर कद बढ़ाने की कसरत शुरू कर दी। लेकिन उससे कोई फायदा होता दिखायी नहीं दिया। अब उनका मन भी साधना मे न लगता। उल्टे लटकते और फर्श पर रखे हुए किताबो के बडल उनसे कहने लगते कि हमे जल्दी से बेचो। उनका धैर्य समाप्त हो जाता और वे अकुलाने लगते।

उसी अकुलाहट में एक दिन उन्होने लटके-लटके पत्नी को पास बुलाया और बोले, "जरा मुझे पकड कर खीचो। शायद खीचने से कुछ फर्क पड़े।"

तानों-तिश्नों से हर वक्त उनकी खिचाई करने को उद्यत रहने वाली पत्नी को वास्तव में उन्हे खीचने का मौका मिला तो तुरन्त तैयार हो गयी। उसने उन्हे खूब खीचा। मगर खिचाई के बाद उनका कद नापा तो वही चार फुट पौने सात इच निकला।

"लगता है, मीराजी, आपने पूरा जोर नही लगाया।" तिलताडमल ने कहा।

"मुझमे जितना था, लगा दिया।" पत्नी ने चिल्ला कर कहा, "और ज्यादा चाहिए तो किसी पहलवान को बुला लो।"

तिलताडमल को लगा, पत्नी ठीक ही कह रही है। और उन्हे सहसा पहलवान रवीन्द्र शर्मा की याद आ गयी। वे कलाबाजी खाकर पाइप से

नीचे कूद पड़े और चटपट कपड़े पहन कर पहलवान रवीन्द्र शर्मा से मिलने चल दिये।

"देखो प्रोफेसर साब, खिचाई तो तुम्हारी हम कर देंगे," रवीन्द्र शर्मा ने कहा, "और शर्तिया कहते हैं कि जितना चाहोगे उतना तुम्हारा कद बढ़ा देंगे, पर यह बताओ कि तुम्हारी खिचाई से हमें क्या मिलेगा?"

"यानी?"

"यानी क्या, मेरी प्रेरणा से तुम यहाँ तक पहुँच गये। हाथ लगा दूँगा तो और भी ऊँचे पहुँचोगे। पर तुम तो योगी महात्मा और भगवान बन जाओगे, मैं क्या बनूंगा?" तिलताड़मल फिर भी कुछ नहीं समझे तो पहलवान रवीन्द्र शर्मा ने कहा, "ऐसा करो कि मुझे अपना गुरु बना लो।" और उनके कान में गुरुमन्त्र फूंका, "दरअसल मैं भी फैक्टरी-गार्ड बन कर यह कुत्तागीरी करते-करते ऊब गया हूँ। स्मगलिंग के धन्धे में हाथ डालना चाहता हूँ। पर उसके लिए कोई साधु-सन्त वाला रूप भरना पड़ेगा। ऊपर उठने के लिए यह सब करना पड़ता है। जब तुम जैसा मच्छर यह कर सकता है तो मैं क्यों नहीं कर सकता?"

"मैं···" तिलताड़मल बौखला गये।

"सुन लो पहले पूरी बात।" पहलवान ने उन्हें प्रतिवाद का मौका दिये बिना कहा, "असलियत क्या है, तुम जानते हो। और मैं भी जानता हूँ कि पुस्तक में अपना कद बारह फूट लिख कर तुम फँस गये हो। इसी लिए मेरे पास आये हो। खिचाई से कुछ नहीं होगा, यह भी तुम जानते होगे। मेरे पास तुम आये हो नपाई के लिए, कि मैं तुमको तुम्हारी मन-चाही ऊँचाई से नाप दू। सो नाप दूंगा। और यह भी तुम जानते हो कि मेरी नपाई को गलत वही बताएगा जिसकी मौत आयी होगी।"

"पर यह···मेरा मतलब है···" तिलताड़मल हकला गये। "होगा कैसे?" पहलवान हँसा, "वह सब मुझ पर छोड़ दो। तुम तो दस-बीस हजार रुपये का इन्तजाम कर लो।"

"दस-बीस ह···।" तिलताड़मल का मुँह खुला का खुला रह गया।

"नहीं तो क्या मुफ्त में महान बनना चाहते हो?" पहलवान ने लताड़ लगायी, "प्रोफेसर, महान बनना चाहते हो तो पब्लिसिटी पर ध्यान दो।

सारे महात्मा, अवतार और भगवान पब्लिसिटी से बने हैं। तुम भी यही करो। एक शानदार हाल बुक कराओ और एक बढ़िया-सा प्रोग्राम दो। उसी में हम तुम्हारी नपाई कर देंगे। तुम्हारा कद नापने के लिए एक स्पेशल इंचटेप बनवाना पड़ेगा सो बनवा लेंगे।"

तिलताड़मल ने कल्पना की : वे योगीराज बन कर मंच पर विराजमान हैं। हाल खचाखच भरा हुआ है। सामने की सीटों पर अनेक नेता, मन्त्री और उद्योगपति बैठे हैं। इन विशिष्ट आमन्त्रित व्यक्तियों के पीछे वे सामान्य दर्शक और श्रोता हैं जो उनके दर्शन करने और प्रवचन सुनने आये हैं। कई दिनों से दिल्ली के सभी दैनिक अखबारों में एक पूरे पृष्ठ का विज्ञापन निकल रहा है जिसमें उनका चित्र और परिचय छपता है। वह चित्र उन्होंने विशेष रूप से दाढ़ी बढ़ा कर बनवाया है। वही चित्र लाखों पोस्टरों पर छपा है जो शहर की हर दीवार पर लगे हुए हैं। इस विज्ञापन से प्रेरित अपार जनता उनके कार्यक्रम में टूट पड़ी है पहलवान रवींद्र शर्मा मौजूद हैं। फैक्टरी-गार्ड की वर्दी में नहीं, इस समय वे रेशम का पीला कुरता पहने और सिर पर गुलाबी साफा बाँधे हुए माइक पर खड़े हैं और योगीराज तिलताड़मल के चमत्कारी व्यक्तित्व की प्रशंसा करने के बाद अपने विशिष्ट इंचटेप से नाप कर उनका कद बारह फुट प्रमाणित कर रहे हैं। इसके बाद तिलताड़मल का प्रवचन है। लोग मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे हैं। प्रवचन के बाद उन्हें भक्तों की भारी भीड़ ने घेर लिया है। देश-विदेश के पत्रकार और फोटोग्राफर भीड़ से निकल कर उन तक आने के लिए धक्कामुक्की कर रहे हैं। हाल के दरवाजे के पास उनकी पुस्तकों का सुन्दर स्टाल सजाया गया है और पत्नी एक बड़ा कैश-बाक्स लेकर बैठी है। पुस्तक की सारी प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गयी हैं और कैश-बाक्स सौ-सौ के नोटों से भर गया है। पुस्तक खरीद कर लोग उस पर उनके ऑटोग्राफ लेने के लिए उमड़ रहे हैं...

लेकिन दस-बीस हजार रुपया कहाँ से आयेगा? तिलताड़मल सोच नहीं पाये। बोले, "पहलवानजी, कुछ कम में काम नहीं चल सकता?"

"चल सकता है। मामूली कार्यक्रम तो पाँच-सात सौ में भी हो

सकता है। लेकिन देख लो, जैसा गुड़ डालोगे वैसा ही मीठा होगा।"

तिलताड़मल ने निश्चय किया कि इस वार कालेज से मिलने वाले वेतन में से एक पैसा भी घर नहीं भेजेंगे। सब कार्यक्रम पर लगा देंगे। कुछ कर्ज भी करना पड़ा तो कर लेंगे। पत्नी से कहेंगे कि थोड़ा-सा और ले आ आते बाप से माँग कर। कार्यक्रम होते ही अगला-पिछला सब सूद सहित चुका देंगे।

घर आकर उन्होंने पत्नी को पूरी योजना बतायी। पत्नी चिंतित हो गयी, लेकिन तिलताड़मल की बातों से लगा कि पुस्तक बेचने के लिए यह कार्यक्रम करना अनिवार्य है, और अनिवार्य है तो करना ही पड़ेगा।

रवींद्र शर्मा अगले ही दिन कार्यक्रम की योजना तय करने और तिलताड़मल की नपाई के लिए विशेष इचटेप बनवाने के निमित्त रुपया लेने गया। बातों ही बातों में 'वैज्ञानिक योग मंच' की स्थापना हो गयी और वह कम से कम पाँच हजार का इंतजाम करने की सलाह देकर तथा सौ रुपये का एक नोट लेकर ही विदा हुआ।

उसके जाने के बाद पत्नी ने कहा, "सुनो जी, मुझे तो यह आदमी बिल्कुल गुंडा मालूम होता है। इसके हाथ में पैसा मत देना। इसकी तो नजरें ही बदमाशों वाली हैं। मेरी तरफ ऐसे देख रहा था जैसे मुझे खायेगा।"

"तो फिर?" तिलताड़मल ने चिंता प्रकट की, "अकेले तो हम कार्यक्रम कर नहीं सकते।"

"क्यों? तुम्हारे इतने दोस्त हैं। कालेज के अपने साथियों से मदद क्यों नहीं लेते?"

"उनमें से कौन है जिस पर भरोसा किया जा सकता है?"

"क्यों? पंडितजी है, बिपिनजी है। दोनों भले आदमी है। बेचारे हर सुख-दुख मे हमारे काम आते हैं। आप बीमार पड़ गये थे तब कितना खयाल रखा था दोनों ने?"

"लेकिन वे तो दोनों कम्युनिस्ट है! वे इस काम के लिए हरगिज तैयार नहीं होंगे।"

"हो जायेंगे। मैं कर लूँगी। तुम उन्हें घर बुला लाना।"

अगले दिन तिलताड़मल ने कालेज जाने की तैयारी करते हुए पत्नी से कहा, "कल तुमने बहुत बढ़िया बात सोची। पंडित और बिपिन बिहारी इस कार्यक्रम को कराने की जिम्मेदारी ले लें तो हमारे दोनों हाथों में लड्डू होंगे। हम मार्क्सवादी भी बने रहेंगे और योगीराज भी बन जायेंगे। इधर का पक्ष ये दोनों संभाल लेंगे, उधर का पक्ष संभालने के लिए रवींद्र शर्मा हैं ही।

उस दिन कालेज में तिलताड़मल प्लाट खरीदने और मकान बनवाने की बातों में लगे रहने वाले प्राध्यापकों के पास न बैठ कर पंडित और बिपिन बिहारी के पास बैठे। उन दोनों को आश्चर्य हुआ, क्योंकि ऐसा कई दिनों के बाद हो रहा था। उनका आश्चर्य उस समय और बढ़ा जब तिलताड़मल ने स्वयं जन-आंदोलन के बारे में चर्चा चलायी और कहा, "मैं योगी बन कर भी मार्क्सवादी ही रहूँगा।" फिर बातों ही बातों में उन्होंने कहा, "पत्नी कह रही थी कि बहुत दिनों से आप लोग घर नहीं आये। आज कृपा कीजिए न !"

संयोग से उस दिन पंडित और बिपिन बिहारी को तिलताड़मल के पड़ोस में रहने वाले कामरेड से कुछ काम था और वे खुद ही उधर जाने वाले थे। इसलिए उन्होंने तिलताड़मल का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। तिलताड़मल उन दोनों को पहले अपने यहाँ ले गये।

तिलताड़मल की पत्नी से सारा किस्सा सुन कर पहले वे दोनों खूब हँसे, फिर गंभीर होकर उन्होंने तिलताड़मल को समझाया : यह बेवकूफी छोड़िए तिलताड़मलजी। बरसों उल्टे लटकने से ही कुछ नहीं हुआ तो अब खिंचाई करने से भी कुछ नहीं होगा। और खिंचाई भी आप किससे करा रहे हैं ! रवींद्र शर्मा से ! लेकिन वह गुंडा आपकी जान तो ले सकता है, खींच कर आपको बड़ा नहीं बना सकता। आप तो उसे अच्छी तरह जानते हैं। फिर क्यों उस गुंडे को गुरु बना रहे हैं ? किताब आपने छपवा ली, बहुत हो गया। इससे सबक लीजिए और इस चमत्कार-चक्कर को छोड़िए। इसमें पड़ कर आप कहीं के नहीं रहेंगे।

तिलताड़मल ने पत्नी की ओर देखा, जैसे कह रहे हों : देखा, मैंने क्या कहा था। ये लोग तो मेरा विरोध ही करेंगे।

तभी विपिन विहारी बोले, "तिलताड़मलजी, आपको पता नही कि इस चक्कर मे आप अपना कितना नुकसान कर रहे है। आजकल आप अपने आपको जाने क्या समझने लगे हैं कि मित्रों से 'हैलो' तक नही करते, गरदन ऊँची करके पास से निकल जाते हैं। अपना काम पड़ने पर दूसरे का समय आप दो दिन क्या दो महीने बरबाद कर सकते हैं, लेकिन काम न होने पर किसी के पास दो मिनट रुक कर बात करने तक की फुरसत आपको नहीं रहती है। यह मत भूलिए कि आपकी नौकरी अस्थायी है और स्थायित्व बहुत कुछ उन्ही लोगो पर निर्भर करता है जिनके साथ आप यह बदसलूकी कर रहे हैं।"

विभागाध्यक्ष पंडित ने कहा, "जहाँ तक हम लोगो की बात है, हमारी बला से आप योगीराज बनें, अवतार बनें चाहे भगवान। दुनिया मे बहुत से पाखंडी हैं, एक आप भी हो गये तो इससे हमारी सेहत पर कोई खास फर्क पड़ने वाला नही है। नियुक्ति के समय जो मार्क्सवादी मुखौटा आपने लगाया था, वह उतर गया, यह अच्छा ही रहा। लेकिन आप अपनी सोचिए। आपके ऊपर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ है और आज के जमाने में नौकरी कितनी मुश्किल से मिलती है, आप अच्छी तरह जानते हैं।"

ये बातें सुनकर तिलताड़मल के पैरों तले की जमीन खिसक गयी। उन्हें लगा कि वे अपनी समस्याओ की सुरसा के फैलते जाते मुंह के सामने हनुमान की तरह अपना कद बढाते-बढाते अचानक अँगूठे बराबर हो गये हैं, मगर न तो वे हनुमान है कि सुरसा के मुंह में जाकर सुरक्षित निकल आयेंगे और न उनकी समस्याएँ ही नागमाता सुरसा है कि परीक्षा लेकर आशीर्वाद देने लगेंगी।

अचानक उनकी आँखों से आँसू निकल पडे और वे हाथ जोड़ कर गिड़गिडाते हुए अपने सहकर्मियों से बोले, "आप लोगो ने मुझ पर बड़ी कृपा की जो वास्तविकता से अवगत करा दिया। मैं कल से ही अपना व्यवहार बदल लूँगा। आप देखिएगा, कल के बाद किसी को मुझसे कोई शिकायत नही रहेगी। मैं विनम्रता का ऐसा प्रतिमान कायम करूँगा कि जैसा किसी न किया हो। बस, आप लोग अपनी कृपा बनाये रखिए।"

और विभागाध्यक्ष को तत्काल प्रसन्न करने के लिए पत्नी से बोले, "पंडितजी को चाय और दो भई !"

"लेकिन भाईसाव, इनके कार्यक्रम का क्या होगा ?" चाय की बात अनसुनी करके पत्नी ने पंडित से कहा, "इन्होंने ने तो उसकी सारी तैयारी कर ली है।"

"उसमें हम क्या कर सकते हैं बहिनजी !" पंडित ने विनम्रतापूर्वक कहा।

"कुछ तो करना ही होगा भाईसाव । इनकी बेवकूफी से हम पर छह-सात हजार का कर्जा हो गया है और किताबों का यह कूड़ा घर में अँटा पड़ा है । आप देख रहे हैं, बैठने की जगह तक नहीं रह गयी है। योगी-ढोंगी तो मैं इनको नहीं बनने दूंगी, पर इन किताबों को बिकवाने का तो कुछ इंतजाम आप लोग कीजिए ही !"

"वह तो पहलवान रवीन्द्र शर्मा कर ही रहे हैं।" बिपिन विहारी ने व्यंग्यपूर्वक कहा।

"उस बदमाश का नाम मत लीजिए भाईसाव, मुझे वह आदमी फूटी आँख नहीं सुहाता । वह इन्हें उल्लू बना रहा है और ये बन रहे हैं। मैं आप लोगों के आगे हाथ जोड़ती हूँ, इस कार्यक्रम का आयोजन आप कर दीजिए। ये अपने आपको सबसे चालाक समझते हैं पर इतने बेवकूफ हैं कि···"

पत्नी के ये उद्गार तिलताड़मल सिर झुकाये सुन रहे हैं, यह देख कर सहकर्मियों को हँसी आ गयी। लेकिन वे बड़ी दुविधा में पड़ गये। तिलताड़मल ने स्वयं कहा होता तो शायद वे फौरन पल्ला झाड़ कर चल देते, लेकिन आँखों में आँसू भरे, हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाती हुई उनकी पत्नी के प्रति कठोर होना उनके लिए संभव नहीं था। फिर भी उन्होंने विनम्र शब्दों में उसे समझाया कि इस कार्यक्रम से भी कोई लाभ होने वाला नहीं है, कि इस तरह किताबें बिक सकती तो हिंदी के सारे लेखक योगीराज बन गये होते।

"लेकिन भाईसाव, आप लोग इनके साथ खड़े न हुए तो वह बदमाश इन्हें लूट लेगा। और हमारी हालत आप देख रहे हैं, चाय के लिए चार साबुत प्याले तक घर में नहीं हैं ! लैक्चरार की बीवी हूँ, लेकिन चपरासी

भी हमसे बेहतर ढंग से रहते होंगे। आप लोगो ने हमेशा इनकी मदद की है, एक बार और कर दीजिए।"

पंडित और विपिन बिहारी ने एक-दूसरे की तरफ देखा, फिर अपनी घड़ियों में समय देखा। विपिन बिहारी उठते हुए बोले, "माफ कीजिए बहिनजी, आप कोई और काम बताती, हम खुशी-खुशी करते, लेकिन इस ढोंग में सहायक बन कर खडे होना हमारे लिए सम्भव नही है।"

"अच्छा तिलताड़मलजी, हम चलें। अभी जरा कामरेड के यहाँ भी जाना है।" पंडित ने कहा और दोनों सहकर्मी कमरे से बाहर निकल गये। तिलताड़मल उन्हें विदा करने बाहर तक आये तो जरूर, लेकिन उन्हें उन दोनो पर बड़ा गुस्सा आ रहा था।

कमरे में लौटकर उन्होंने घोषणा की, "जरा परमानेंट हो जाऊँ, फिर इन सालों की खाट खड़ी करूँगा।"

पत्नी को भी उन दोनों पर गुस्सा कम नही था, लेकिन वह तिलताड़मल पर बरस पड़ी, "यह मर्दानगी किसी और को जाकर दिखाना। खामखाँ तिल का ताड बनाते रहते हो। कहते हो कि तुम्हारे हजारों दोस्त और लाखों भक्त हैं, लेकिन आज मैं जान गयी, उस गुंडे के सिवा तुम्हारा साथ देने वाला कोई नही है।"

'प्रस्ताव', सितंबर १९८१

राष्ट्रीय राजमार्ग

"......"

"हैल्लो करुणाशंकर! आओ भाई, आओ। बैठो। कैसे हो? घर में भाभी और बच्चे सब ठीक?"

"......"

"हाँ, मैं ठीक हूँ। लेकिन भाई, बड़ी भयानक दुर्घटना थी। क्या है कि मौत के मुंह मे जाकर जिंदा लौट आया हूँ। ड्राइवर तो बेचारा वहीं खत्म हो गया। लेकिन तुम यह मत समझना कि मैंने तुम्हे उस दुर्घटना का वाकया सुनाने के लिए बुलाया है।"

"......"

"बताता हूँ, बताता हूँ, ऐसी जल्दी क्या है? आराम से बैठो, चाय-वाय पियो। जरा विस्तार मे बात करनी है तुमसे। लेकिन यह बताओ, तुम किस दुनिया मे रहते हो? इतने पुराने दोस्त होकर भी तुमने मेरी नयी नियुक्ति पर बधाई नही दी। दुनिया-भर से बधाइयां मिली और तुम्हारा टेलीफोन तक नही···"

"... ..."

"ओह, शुक्रिया। लेकिन यार, मैं ईमानदारी से कहता हूँ, इस पद पर तुमको होना चाहिए था। मैंने तो कभी सपने मे भी नही सोचा था कि मुझ जैसे मामूली सड़क-इंजीनियर को राष्ट्रीय राजमार्ग विकास विभाग का अध्यक्ष बना दिया जायेगा।"

"......"

"अरे भाई, जो सच है उसे स्वीकार करने मे क्या हर्ज है? सत्यप्रिय श्रीवास्तव के बाद यह पद किसी को मिलना चाहिए था तो तुमको। तुम ही

इसके योग्य थे।"

"......"

"हाँ, इसमें क्या शक है, सत्यप्रिय श्रीवास्तव से ज्यादा योग्य और कौन होगा! लेकिन करुणाशंकर, क्या है कि उन्होंने इस पद पर रहते हुए बहुत समझदारी का परिचय नहीं दिया। या शायद यह पद ही ऐसा है। नहीं तो उन जैसा अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त और इतना महान प्रतिभाशाली इंजीनियर भला इस तरह असफल सिद्ध होता? मैं तो कहता हूं कि इस देश की हाइवे-इंजीनियरी का इतिहास लिखा जायेगा तो उनका नाम फ्रांस के पियरे-मारी-जिरोम और ब्रिटेन के टामस टेलफोर्ड जैसे महान सड़क-इंजीनियरों की तरह लिया जायेगा। सच मानो, उनसे अपनी तुलना करता हूँ तो मुझे बड़ी हीनता महसूस होती है। कहाँ वह जीनियस और कहाँ मैं! मेरी जगह तुम होते तो कोई बात भी थी।"

"......"

"नहीं-नहीं, तुम अपनी यह झूठी विनम्रता मुझे मत दिखाओ। मंत्रालय में रहते तुम्हारा सब काम मेरे सामने आता रहा है। राष्ट्रीय राजमार्ग पर तो तुमने जो कुछ हो सकता है, किया ही है, उसके अलावा स्वैच्छिक श्रमदान योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय राजमार्ग को गाँवों से जोड़ने वाली जो सड़कें तुमने देहाती लोगों के श्रमदान से बनवायी हैं, उनके लिए सरकार तक ने तुम्हारी प्रशंसा की है। और फिर, तुम मेरे सहपाठी रहे हो, मित्र हो, मैं तुम्हारी योग्यता और प्रतिभा को नहीं पहचानूँगा? क्या है कि जब भी कहीं सूझ-बूझ, परिश्रम और कार्य-कुशलता की बात चलती है, सत्यप्रिय श्रीवास्तव के बाद मैं तुम्हारा ही उदाहरण दिया करता हूँ। लेकिन यार, एक बात मुझे कहने दो: तुम्हारे अंदर व्यावहारिकता बिल्कुल नहीं है। क्या है कि ईमानदारी से अपना काम करना, देश की भलाई के लिए चिंतित होना, ये सब अच्छी बातें हैं, लेकिन व्यावहारिकता तो हमारे अंदर होनी ही चाहिए। तुम थोड़े-से भी व्यावहारिक होते तो इस कुर्सी पर आज मैं नहीं, तुम बैठे होते। क्या जरूरत थी तुम्हें इंजीनियरों के उस सम्मेलन में सत्यप्रिय श्रीवास्तव की वकालत करने की? क्या तुम्हें मालूम नहीं था कि वह सम्मेलन इस पद के लिए योग्य प्रत्याशी का चयन करने के लिए

बुलाया गया था?"

"......"

"नहीं? सचमुच तुम्हें मालूम नहीं था? कमाल की बात है! वहाँ मौजूद हर आदमी को इस बात का पता था और सब लोग पूरी तैयारी के साथ आये हुए थे। अरे, जब तुम्हें मालूम है कि सत्यप्रिय श्रीवास्तव इस पद से हटाये जा चुके हैं, जगह खाली पड़ी है, उसे भरने के लिए विज्ञापन निकल चुका है, लोग आवेदन कर चुके हैं, और तब अगर मंत्री महोदय राष्ट्रीय राजमार्ग की समस्याओं पर विचार करने के लिए देश के तमाम प्रमुख इंजीनियरों का सम्मेलन बुला रहे हैं, तो यह समझना क्या मुश्किल था कि यह तमाशा किसलिए हो रहा है? क्या है कि आवेदन और साक्षात्कार वगैरह तो सब औपचारिकताएँ हैं, ऐसे महत्त्वपूर्ण पद के लिए योग्य व्यक्ति का चयन ऐसे ही होता है।"

"......"

"क्या कह रहे हो? तुमने आवेदन ही नहीं किया था? हर तरह से इतने योग्य और अनुभवी होकर भी तुमने इस पद के लिए आवेदन ही नहीं किया था? मुझे विश्वास नहीं हो रहा है करुणाशंकर! तुम आदमी हो कि घनचक्कर? भला ऐसा मौका कोई छोड़ता है? पच्चीस साल से तुम राष्ट्रीय राजमार्ग पर काम कर रहे हो, इसकी प्रत्येक समस्या को अच्छी तरह समझते हो, इतना अध्ययन तुमने किया है, श्रमदान वाली सड़कों पर प्रयोग करते हुए जो रिसर्च-पेपर तुमने लिखे हैं, उनकी प्रशंसा विदेशों तक में हुई है, और तुमने आवेदन ही नहीं किया! अरे यार, तुमने अपना नहीं तो अपने परिवार का खयाल तो किया होता। अभी दो और लड़कियों की शादी तुम्हें करनी है, फिर लड़का अभी छोटा है, उसको पढ़ा-लिखा कर कहीं लगाने में अभी कम से कम पांच साल और लग जायेंगे। फिर भी तुमने अपने भविष्य के बारे में कुछ नहीं सोचा?"

"......"

"ठीक कहते हो दोस्त, तुमने सोचा ही कब! सोचा होता तो इस नौकरी में मालामाल हो गये होते। राष्ट्रीय राजमार्ग तो क्या है कि रुपये की नदी है, जो सबकी प्यास बुझाती है। यह तुम्हारी किस्मत और हिम्मत

कि तुम कितना पी पाते हो। पच्चीस साल कोई राष्ट्रीय राजमार्ग पर इंजीनियरी कर ले और सूखी तनखा पर गुजारा करता रहे, कोई विश्वास नही करेगा। तुम पता नही किस मिट्टी के बने हो। तुम्हारे साथ के लोगो ने सैकडो एकड़ जमीनें खरीद ली, कई-कई आलीशान कोठियाँ बनवा ली, लाखों रुपया जोड लिया और तरक्की करते हुए कहाँ से कहाँ जा पहुँचे—दूर क्यों जाओ, मुझे ही देख लो—और तुम अपनी ईमानदारी को लिये बैठे रहे। चलो, बैठे रहे तो बैठे रहे, लेकिन ईमानदारी के साथ तुम सर्विस मे अपना कैरियर तो बना ही सकते थे। इस पद पर आकर एक पैसा भी नाजायज न बनाते, पर तुम्हारा वेतन तो दूने से भी ज्यादा हो जाता। बाकी सरकारी सुविधाएँ मिलती सो अलग। समाज मे एक प्रतिष्ठा बनती, देश-विदेश मे नाम हो जाता। समझ मे नही आता, इसमे तुम्हारे सिद्वात कहाँ आडे आते थे।"

"......"

"हाँ, यह मैं मानता हूँ, ऐसे पद पर सिद्धांतों की रक्षा नही हो सकती। लेकिन सिद्धांतों की रक्षा इस व्यवस्था मे किस पद पर रहकर हो सकती है? तुम अब तक इतने पदों पर रहे हो, अपने अनुभव से बताओ। हद से हद तुम अपने आपको पाकदामन रख लोगे, पर दूसरों को? दुनिया के काम तो जैसे चलते हैं वैसे ही चलेगे।"

"......"

"मैं खुद मानता हूँ कि यह सड़क शुरू से ही गलत बनी है और इसे सुधारने का एक ही उपाय है कि इसे तोड़कर दुबारा नये सिरे से बनाया जाये। और मैं ही क्या, देश का बच्चा-बच्चा जानता है कि यह सडक हत्यारी है। इस पर जो इतनी बड़ी-बडी दरारें पड गयी है, जो खतरनाक खाइयाँ बन गयी है, सो किसे दिखायी नही देती? जगह-जगह से इसे काटने वाले नदी-नालों और कच्चे दगडो ने इसकी जो हालत कर रखी है, वह किससे छिपी है? रोज इस पर भयकर दुर्घटनाएँ होती हैं और सैंकड़ों लोग मारे जाते है। राहजनी और लूटपाट तो रोजमर्रा के किस्से है। सरकार भी सब जानती है। वह खुद ही दुर्घटनाओ की जाँच और सडक की मरम्मत कराते-कराते तग आ चुकी है। मगर सोचने की बात यह है कि

सैकड़ों सालों में जो चीज बनकर तैयार हो चुकी है, जिसको बनाने में करोड़ों लोगों का खून-पसीना लगा है, जिस पर देश का अरबों-खरबों रुपया खर्च हो चुका है, क्या उसे तोड़कर फिर से बनाया जा सकता है ? भई, इस देश में क्रांति हो जाये, वैज्ञानिक ढंग से सोचने और जनहित में काम करने वाली कोई दूसरी सरकार आ जाये, तब की बात और है, मगर इसी व्यवस्था और इसी सरकार के चलते क्या यह संभव है ? फिर असंभव को संभव बनाने की कोशिश सत्यप्रिय श्रीवास्तव करें या तुम करो, उससे कुछ हो सकता है ? और कोशिश भी क्या, ज्यादा से ज्यादा तुम आलोचना कर सकते हो, और आलोचना का नतीजा तुमने देख लिया। सत्यप्रिय श्रीवास्तव को दूध मे से मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया गया और तुमको सम्मेलन में नीचा देखना पड़ा।"

"......"

"मैं कब कहता हूँ कि सत्यप्रिय श्रीवास्तव के साथ अन्याय नहीं हुआ है ? जिस आदमी ने इस देश की बस्तियों मे ही नहीं बीहड़ जंगलों, पहाड़ों, रेगिस्तानो और दलदली इलाकों तक में इंसान के लिए इतने रास्ते निकाल दिये; जिसने सड़क-इंजीनियरी का इतना विकास करके दिखा दिया; जिसकी बनायी हुई सड़कें विदेशों तक में उन्नत सड़क-निर्माण की मिसालें मानी जाती हैं; उसकी देशभक्ति, कर्तव्यपरायणता, योग्यता और कार्य-कुशलता मे भला किसको सदेह हो सकता है ? लेकिन क्या है कि सत्यप्रिय श्रीवास्तव को राष्ट्रीय राजमार्ग विकास विभाग के अध्यक्ष-पद पर या तो आना नही चाहिए था, या आ गये थे तो यहाँ कुछ करके दिखाना चाहिए था। अजीब बात है, आप राष्ट्रीय राजमार्ग की मरम्मत, सुरक्षा और विकास के लिए जिम्मेदार है, लेकिन उसकी मरम्मत हो नही पाती, उस पर टूट-फूट जारी रहती है, दुर्घटनाएँ बदस्तूर होती रहती हैं, और सरकार आपसे जवाब तलब करती है तो हर बार आपका एक ही जवाब होता है कि यह सड़क शुरू से बनायी ही इतने गलत ढंग से गयी है कि इस पर यही सब होगा। आप हर समस्या का गंभीर वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं और बताते हैं कि इसके निर्माण मे सडक-इंजीनियरी के सामान्य नियमो तक का ध्यान नही रखा गया है। लेकिन इस सबका मतलब क्या होता है ? यही कि

समूची सड़क तोड़कर नये ढंग से बनायी जाये। मतलब जरा भी अस्पष्ट न रह जाये, इसके लिए आप एक वैकल्पिक योजना भी सरकार के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। मैं मानता हूँ कि उनकी वैकल्पिक योजना की श्रेष्ठता और वैज्ञानिकता से कोई इनकार नही कर सकता, लेकिन सरकार उसका क्या करे? उसे मानकर अपने माथे पर इतना बडा कलंक लगा ले कि अब तक वह जो कुछ करती रही है, गलत करती रही है? सत्यप्रिय श्रीवास्तव भूल गये कि उनका काम एक दी हुई सड़क का विकास करना है, पुरानी सड़क तोडकर नयी सड़क बनाना नही। और उनकी इस भूल का दड उनको मिलना ही था।"

"......"

"क्या है कि आदमी को अपनी परिस्थिति समझनी चाहिए, अपना सामर्थ्य देखना चाहिए, तब अपनी भूमिका निश्चित करनी चाहिए। समय बदलता है, परिस्थितियाँ बदलती हैं, तो उनके अनुसार आदमी को भी बदलना पड़ता है। सत्यप्रिय श्रीवास्तव को यह समझ लेना चाहिए था कि अब उनका वह जमाना नही रहा जब वे अपने हर काम के सर्वेसर्वा हुआ करते थे। वह जमाना और था जब उनके धनवान पिता सरकार में मंत्री थे। मंत्री-पुत्र न होते तो क्या उन्हें इतना मान-सम्मान मिलता? विदेश से इंजीनियरी पढ़कर लौटे तो जैसे देश पर अहसान किया। संयोग से जिस काम को हाथ मे लिया उसमें सफल भी होते गये। यश भी मिलता रहा। अच्छे इंजीनियर होने के साथ-साथ अच्छे वक्ता और लेखक भी थे और दुनिया भर के प्रचार-प्रसार के साधन उन्हें महान बनाने मे लगे हुए थे। सबसे बडी बात यह थी कि उस समय वे सरकार की योजनाओं को बेहतरीन ढंग से पूरा कर रहे थे। इसीलिए सरकार उनकी हर बात मानती थी, स्वतंत्रतापूर्वक काम करने की सुविधाएँ देती थी, बार-बार सम्मानित और पुरस्कृत करती थी। सब उनके अक्खड़ और जिद्दी स्वभाव को जानते थे। खुलकर सरकार की आलोचना कर डालते थे, तब भी कोई चूं नही करता था। बडे-बडे मंत्री भी उनकी चुभती हुई बातो पर मुस्कराकर रह जाते थे। मगर इस विभाग में आने तक उनकी स्थिति क्या रह गयी थी? पिता मंत्री नही रहे, सत्तारूढ दल को छोडकर प्रतिपक्ष मे जा बैठे। इससे समझदार

लोगों के बीच सम्मानित जरूर हुए, पर अगली बार लाखों रुपया फूंककर भी चुनाव नहीं जीत सके। और सुनते हैं कि इसी आघात से चल बसे। ऐसी हालत में सत्यप्रिय श्रीवास्तव का रोब-रुतबा क्या वही रह सकता था? अब उनके सिर पर किसका हाथ था? और फिर, पहले जिस तरह की सफलताएँ उन्हें अपने कामों में मिलती रही थीं, यहाँ आकर नहीं मिली।"

"......"

"ठीक कहते हो, कैसे मिलती? उन्हें उनके मनचाहे ढंग से काम करने दिया जाता तो निश्चय ही वे यहाँ भी सफल होते। एक ऐसा नया राष्ट्रीय राजमार्ग उन्होंने बनवा दिया होता जो उनके जीवन की तो सबसे बड़ी उपलब्धि होता ही, जिससे जनता को भी बहुत लाभ होता, जिस पर सरकार भी गर्व करती। लेकिन परिस्थितियां बदल गयी थीं न। उन्हें समझ लेना चाहिए था कि अब वे अपने काम के सर्वेसर्वा नहीं हैं। उन्हें सरकार से विरोध मोल लेने के बजाय खुद को समय के अनुकूल बना लेना चाहिए था।"

"......"

"सही है, आदमी के अपने सपने होते हैं, आदर्श होते हैं, सिद्धांत होते हैं। लेकिन परिस्थितियाँ भी तो कुछ होती हैं या नहीं? तुम्हें याद होगा, हम लोग जब इंजीनियरी पढ़ रहे थे तभी से उन्हें अपना आदर्श मानने लगे थे। उन दिनों उनका कोई लेख, बयान या इंटरव्यू छपता था तो हम कितनी श्रद्धा से पढ़ा करते थे। तब तक हमने उन्हें देखा भी नहीं था, लेकिन उनकी वह पहली पुस्तक 'सड़क बनाना विज्ञान है या कला?' हम लोगों ने साथ-साथ पढ़ी थी। मैंने तो कई-कई बार पढ़ी थी। उसमें उन्होंने अपने काम का जो तरीका बताया था, मुझे लगता था कि यही एकमात्र सही तरीका है: अध्ययन, कल्पना और श्रम। तुम तो नौकरी लगने पर दूसरे डिवीजन में जाकर मुझसे बिछुड़ गये, लेकिन तुम्हारी यह बात मुझे हमेशा याद रही कि हमें जीवन में सत्यप्रिय श्रीवास्तव बनना है।"

"...... "

"नहीं, मैं भूला नहीं। मुझे आज तक याद है। लेकिन क्या है कि

[illegible] है, [illegible] है। राष्ट्रीय राजमार्ग पर जब [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
है: [illegible] एक ऐसे
[illegible]
सके। लेकिन हुआ क्या? नौकरी में आकर मैंने अपनी यह इच्छा [illegible]
दो दिनों में मुझे पता चल गया. किसी से [illegible], किसी से [illegible]।
तुम्हें याद होगा, उन दिनों अपना चीफ इंजीनियर वह मोटा और [illegible]
रामजी पटेल हुआ करता था। अरे वही, जो हर समय अपने दाँत [illegible]
[illegible] रहता था और जिसके बारे में यह मशहूर था कि
उसने [illegible] दिमाग को परलोक [illegible] के एक हजार
एक तरीके ईजाद किये हैं।"

"......"

"हाँ, वही। तो एक दिन मैं उनसे मिला और मैंने अपनी बात उसके सामने रखी। रामजी पटेल ने सुन तो ली मेरी बात, लेकिन ऐसे कि जैसे मुझ पर अहसान कर रहा हो। वह शायद उसी समय खाना खाकर आया था। मैं बोलता रहा और वह चुप बैठा दाँत कुरेदता रहा। फिर उसने जोर से डकार ली और बोला, 'देखो बच्चे, किताबी सड़क और होती है, असली सड़क और। तुम तो अभी कल आये हो, मुझे बीस बरस हो गये, और मैंने अपने डिवीजन से बाहर जाकर यह नहीं देखा कि यह सड़क कहाँ से आती है और कहाँ को जाती है। देखने की जरूरत भी क्या? योजना और नक्शों से तुम्हारा क्या वास्ता? हर चीज के लिये सरकार ने अलग विभाग बना रखे हैं, हर काम के लिए विशेषज्ञ नियुक्त किये हुए है। हमारा काम अपना काम करना है, उनके काम में टाँग अड़ाना नहीं।"

"'लेकिन सर, हमें मालूम तो होना चाहिए कि हम क्या कर रहे है, क्यों कर रहे है, और हमारे काम का मतलब क्या है?' मैंने कहा था।

" रामजी पटेल मेरी बात सुनकर अपने बुझे हुए सिगार को जलाने में काफी देर व्यस्त रहा, फिर अपनी गंजी खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए बोला, 'ठीक-ठीक बताओ, तुम क्या चाहते हो?' लेकिन यह सवाल नहीं था, क्योंकि वह मेरे उत्तर के लिए रुके बिना कहता गया, 'तुम अपनी कोई समस्या लेकर आये हो या मुझसे दार्शनिक बहस करने? क्या तुम मुझसे यह जानना चाहते हो कि जीवन क्या है, हम क्यों जीते हैं, और हमारे जीने का मतलब क्या है? यह मैं नहीं बता सकता मेरे बच्चे। मैंने इस पर कभी सोचा ही नहीं। और सोचने की जरूरत भी क्या? इंसान पैदा होता है, जैसी किस्मत लेकर आता है, वैसी जिंदगी जीता है और एक दिन मर जाता है। इसमे सोचने और परेशान होने की क्या बात है? तुम्हारी किस्मत अच्छी है कि इतनी पिछड़ी हुई जाति के एक गरीब घर मे पैदा होने के बावजूद तुम्हें इतनी अच्छी नौकरी मिल गयी। जाओ, अपना काम करो। शादी न हुई हो तो अब कायदे से कोई लड़की देखकर बढ़िया-सी शादी करो, मकान-वकान बनाओ, स्टेटस बढ़ाओ और खुश रहो। हो सके तो ईश्वर को और सरकार को धन्यवाद दो, जिसकी कृपा से यहाँ तक पहुँच गये हो। मुझे देखो, मैंने तो सब कुछ ऊपरवाले की मर्जी पर छोड़ रखा है। जिंदगी आराम से कट रही है, उसकी कृपा से बच्चों का भविष्य भी सुरक्षित है। और क्या चाहिए इंसान को?'

" मैंने कहा, 'लेकिन सर, सत्यप्रिय श्रीवास्तव तो…'

" इतना सुनते ही रामजी पटेल बड़े जोर से हँसा। हँसने के बाद उसने कहा, 'बच्चे, सत्यप्रिय श्रीवास्तव लाखों में एक होता है। हर आदमी सत्यप्रिय श्रीवास्तव नहीं बन सकता। जहाँ तक उसकी महानता का सवाल है, वह महज एक संयोग है। कुछ खास परिस्थितियों की देन। मैं उस आदमी को जानता हूँ। उसके लेख-वेख भी मैंने पढ़े हैं। इंजीनियरी का वह जानकार है। लेकिन माफ करना, मुझे वह आदमी एक पढ़ा-लिखा ईडियट लगता है। वह दूसरों को एकदम अव्यावहारिक उपदेश देता है। उसे अपने काम में विशेष सुविधाएँ मिलती रही है, इसलिए समझता है कि हर आदमी को वैसी सुविधाएँ और अवसर प्राप्त हैं। वह जानता ही नहीं कि दुनिया में काम कैसे होता है। जहाँ कदम-कदम पर एक व्यक्ति की इच्छा दूसरे हजारों

लोगों की इच्छाओं से टकराती हो, जहाँ एक छोटा-सा निर्णय लेने के लिए राजनीतिक और प्रशासनिक तंत्र की तमाम लंबी-चौड़ी भूलभुलैयों में से गुजरना पड़ता हो, वहाँ स्वतंत्रतापूर्वक काम करने की सुविधा कितनी होती है, उसे क्या पता ! अव्वल तो यहाँ हर काम एक-दूसरे से सबंधित होकर भी इतना अलग-थलग होता है कि सड़क का डिजाइन बनाने वाले का उसके कंस्ट्रक्टर से कोई वास्ता नही रहता, कंस्ट्रक्शन के काम का मेटेनेंस के काम से कोई संबंध नही रहता, और मेटेनेंस का टैस्टिंग, रिसर्च और डेवलपमेंट जैसे कामों से कोई तालमेल नही रहता। होना चाहिए एक मैनेजमेंट जो इन सब कामों को एक सूत्र में बाँधकर एक दी हुई सड़क के निर्माण और विकास के साथ-साथ समूची सड़क-इंजीनियरी का विकास करे, मगर ऐसा कुछ है नही। बची सरकार, सो उसे अपनी राजनीति से इतनी फुरसत कहाँ कि इन कामों की तरफ ध्यान दे ? ऐसी परिस्थितियों मे अगर तुम्हारा कोई राजनीतिक दबदबा न हो, और नौकरी करना तुम्हारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य हो, तो तुम क्या कर सकते हो ? राष्ट्रीय राजमार्ग की बात छोड़ो, अपनी मनचाही कोई भी सड़क सिर्फ दो फुट बनाकर देखो। मंत्रियो से लेकर अधिकारियों तक, अधिकारियों से लेकर सहकर्मियों तक, सहकर्मियों से लेकर ठेकेदारों तक, और ठेकेदारो से लेकर मजदूरों तक—हर कोई ऐसा अड़ंगा बनकर सामने आयेगा कि तुम्हारे लिए अपनी मनचाही दो इंच सड़क बनाना भी मुश्किल हो जायेगा।'

"और करुणाशंकर, श्रमदान वाली सड़कें बनवाते समय तुम्हारा अनुभव चाहे दूसरा रहा हो, लेकिन राष्ट्रीय राजमार्ग पर काम करते हुए तुमने भी अनुभव किया होगा कि रामजी पटेल की बातें कितनी सही थीं। मैं चाहकर भी सत्यप्रिय श्रीवास्तव नही बन सकता था। मैं किसी बड़े आदमी का बेटा नही था। मैंने विदेशों में ऊँची शिक्षा नही पायी थी। मैं सम्मानपूर्वक किसी नये-निराले पद पर नियुक्त नही किया गया था, जहाँ स्वतंत्र रूप से बहुत कुछ कर दिखाने के अवसर होते और लगातार प्रोत्साहन मिलता रहता। मुझे तो मेरे गरीब बाप ने कर्ज काढ़कर इंजीनियरी पढ़ायी थी। अनुसूचित जाति का होने के कारण कुछ वजीफा वगैरह मिलता रहा, इसलिए पढ़ भी गया। रिजर्वेशन की सुविधा मेरे लिए थी, फिर भी नौकरी

पाने के लिए मुझे जगह-जगह अपमान और निराशा का सामना करना पड़ा और अंत में तीन हजार की घूस देकर ही नौकरी पा सका था। यह सही है कि मैने उन्नति की, लेकिन इसके लिए मुझे अपने सब आदर्शों और सिद्धान्तों का गला घोट देना पड़ा। अपमान के जहर-भरे घूंट पीता रहा और प्रभावशाली लोगों की चापलूसी करता रहा। फिर भी मुझे हमेशा ऐसी स्थिति में रखा गया कि मेरी औकात किसी बहुत बड़ी मशीन के एक बहुत छोटे-से पुर्जे से ज्यादा कभी नही रही।"

"......"

"नही, तुम्हारी स्थिति फिर भी मुझसे बेहतर थी। हालांकि तुम भी किसी बड़े बाप के बेटे नही थे, तुम्हारे पिताजी मामूली स्कूल-मास्टर ही थे, और आमदनी के लिहाज से मेरे पिता चमड़े के काम मे उनमे कुछ ज्यादा ही कमा लेते होगे, फिर भी तुम्हारे साथ यह सुविधा थी कि तुम ब्राह्मण थे। तुम्हे गरीबी के दुख भले ही झेलने पड़े, पर मेरी तरह अपमान नहीं सहना पड़ा। तुम्हे गरीब होने के कारण छात्रवृत्ति मिलती थी और मुझे अनुसूचित जाति का होने के कारण, लेकिन तुम्हें इंजीनियरिंग कालेज में कोई कुछ नही कहता था, जबकि मुझे उस मामूली-सी छात्रवृत्ति के लिए अपने शिक्षकों और सहपाठियो के ताने सुनने पड़ते थे। संयोग से तुम तो मेरे मित्र बन गये थे, लेकिन बाकी सब? उन्हे लगता था कि मैं किसी ऊँची जाति वाले का हक मारने आ गया हूँ। मैं उनका कुछ नही बिगाड़ता था, फिर भी वे मुझसे नफरत करते थे। तुमको भी मेरे खिलाफ भड़काते थे। और नौकरी मे आने पर भी क्या मेरा अपमान बद हुआ? रामजी पटेल के पास अगर तुम वही बात करने जाते तो शायद तुम्हें कुछ और जवाब मिलता, लेकिन मुझे उसने मेरी जाति और औकात बताना जरूरी समझा। और आज इतने बरसों के बाद भी हालत बदली नही हैं। तुम्हे पता है, जिस दिन से मेरी नियुक्ति इस पद पर हुई है, उसी दिन से ऊँची जाति वाले लोग मुझे यहाँ से हटाने के बारे मे सोचने लगे हैं। और विरोध का सामना करना पड़"

"......"

अवसर नहीं मिलता तो सारी योग्यताएँ धरी रह जाती हैं। करने को मैं गर्व कर सकता हूँ कि इतने महत्त्वपूर्ण पद पर आ गया हूँ, लेकिन मुझे लगता है, मैं यहाँ कुछ भी नहीं हूँ। गर्व मुझे उस समय भी हुआ था जब पहले-पहल राष्ट्रीय राजमार्ग पर मेरी नियुक्ति हुई थी। मैं खुशी से भर उठा था कि देखो, मैं देश के प्रत्येक भू-भाग को राजधानी से जोड़ने वाले सबसे बड़े राजमार्ग के निर्माण से संबद्ध हूँ। लेकिन उसके निर्माण में मेरी भूमिका क्या थी? योजना पहले से बनी हुई थी, काम पहले से होता आ रहा था, उसमें गलतियाँ और धाँधलियाँ पहले से चली आ रही थीं। चीफ इंजीनियर अपने मातहतों का कोई सुझाव मानना अपनी तौहीन समझता था। और फिर, मेरे सुझावों को वह क्यों मानने लगा? मेरा पद तो नीचा था ही, मेरी जाति भी नीची थी। जोश में आकर एक बार मैंने सत्यप्रिय श्रीवास्तव को एक पत्र लिख डाला। उन दिनों वे किसी देहाती इलाके में श्रमदान से सड़कें बनवाने के प्रयोग कर रहे थे। मैंने राष्ट्रीय राजमार्ग पर होने वाले काम की आलोचना करते हुए उन्हें लिखा: क्या यह उचित नहीं होगा कि इंजीनियरों को सड़क-निर्माण की सारी प्रक्रियाओं में शामिल करके उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास किया जाये ताकि वे अपनी योग्यता और प्रतिभा का पूरा उपयोग जनहित में कर सकें?…"

"……"

"नहीं, उनका जवाब नहीं आया। पता नहीं उन्हें मेरा पत्र मिला भी या नहीं, पर जाने कैसे, रामजी पटेल को इसका पता चल गया। उसने मुझे बुलाकर बहुत डाँटा। बड़े अपमानजनक ढंग से उसने मुझे मेरी जाति और औकात बतायी। दूसरों के काम में टाँग अड़ाने के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई की धमकियाँ दीं और आइंदा अपने काम से काम रखने के लिए कहा। अब बोलो, ऐसी स्थितियों में तुम कुछ नया, मौलिक और महत्त्वपूर्ण क्या कर सकते हो? क्या है कि जैसे बिगड़ी हुई मशीन में डाला गया नया पुर्जा भी घिस-घिसाकर खराब हो जाता है, वैसे ही इन परिस्थितियों में तुम अपने सिद्धांत और आदर्श, अपनी प्रतिभा और योग्यता सब खो बैठते हो। बन जाते हो एक भ्रष्ट, निकम्मे, बड़ों की चापलूसी करने वाले और छोटों पर रोब जमाने वाले अफसर। तुम अच्छी तरह जानते हो कि यह सब

अच्छा नहीं है, गलत हो रहा है, लेकिन कुछ कर नहीं पाते हो।"

"......"

"माफ करना करुणाशंकर, तुम बड़े ईमानदार आदमी हो, लेकिन क्या तुम्हें समझौता नहीं करना पड़ा? तुम भी तो सत्यप्रिय श्रीवास्तव बनना चाहते थे, बन पाये? क्या है कि तुम भ्रष्ट नहीं हुए, तुमने जी-हजूरी नहीं की, लगन और मेहनत से अच्छे से अच्छा काम किया। मगर उससे हुआ क्या? राष्ट्रीय राजमार्ग में अपना मनचाहा कौन-सा परिवर्तन तुम कर पाये? उल्टे यह हुआ कि अपनी ईमानदारी के चलते तुम हर जगह लोगों की आँखों में खटकते रहे। दंडस्वरूप आज यहाँ तो कल वहाँ तुम्हारा तबादला होता रहा। अपने परिवार को लिये-लिये यहाँ-वहाँ मारे फिरते रहे। कहीं तुम्हारी कोई जमीन नहीं, कहीं तुम्हारा अपना कोई मकान नहीं, चार पैसे भी तुम नहीं जोड़ पाये। सत्यप्रिय श्रीवास्तव अपने पद से हटा दिये गये, उन्हें कोई खास फर्क नहीं पड़ा। उल्टे प्रसिद्धि मिल रही है। रोज अखबारों में उनका नाम उछाला जा रहा है। आज नहीं तो कल किसी दूसरे महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हो जायेंगे। न भी हुए तो संपत्तिशाली आदमी हैं, चैन से बुढ़ापे के दिन गुजारेंगे। मान लो, वे चैन से नहीं बैठते, कोई हंगामा खड़ा करते हैं और जेल-वेल में डाल दिये जाते हैं, तब भी उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जिद्दी आदमी हैं। उनके जीवन का एक उद्देश्य है और उसे पूरा करने का संकल्प करके वे उस पर डटे हुए हैं। ज़िंदगी-भर डटे रहे हैं। आराम की जिंदगी को लात मारकर देहातों, जंगलों, रेगिस्तानों और पहाड़ों में भटकते रहे हैं। उन्होंने शादी नहीं की, जमीनें नहीं खरीदीं, बँगले नहीं बनवाये। अपना काम किया और अपने सिद्धान्तों के लिए ऊँचे-से-ऊँचे पद को सदा अपने जूते की ठोकर पर रखते रहे। और जो आदमी ज़िंदगी-भर अपनी जान हथेली पर लिये घूम सकता है, उसके लिए जेल-वेल क्या चीज है? मगर हम-तुम? मान लो, तुम्हें आज नौकरी से निकाल दिया जाये तो तुम क्या करोगे? सत्यप्रिय श्रीवास्तव के लिए तो बहुत-से लोग चिंतित हैं, पर तुम्हारे बारे में किसी को यह जानने की भी फुरसत नहीं होगी कि तुम्हें क्यों निकाल दिया गया।"

"......"

"कहना मैं यह चाहता हूँ कि दुनिया में कोई किसी का आदर्श नही बन सकता। सबको अपना रास्ता खुद चुनना या बनाना पड़ता है।"

"......"

"हाँ, उनकी परंपरा आगे बढनी चाहिए। लेकिन कोई भी परंपरा किसी की नकल करके आगे नही बढती। क्या है कि रूढियो को, बुराइयों के सिलसिले को तो नकल से आगे बढाया जा सकता है, लेकिन किसी अच्छी चीज को आगे बढाने के लिए व्यक्ति को अपनी परिस्थितियो के अनुसार नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हमने सत्यप्रिय श्रीवास्तव बनना तो चाहा, लेकिन अपनी परिस्थितियो में अपने जीवन का कोई उद्देश्य हम निश्चित नही कर सके। उद्देश्य नही था, कोई संकल्प नही था, इसलिए हम हमेशा जोखिम उठाने से डरते रहे। ऐसी स्थिति मे हम क्या बन सकते थे? वही,-जो यह व्यवस्था हमें बनाना चाहती थी। कुछ सुविधाओं के लिए अपनी इच्छाओ का गला घोटकर, अपनी अच्छाइयों और सच्चाइयो को दफनाकर सब कुछ सह जाने वाले समझौतापरस्त। पद-प्रतिष्ठा की दृष्टि से मैं तुमसे जरा आगे निकल गया, सदाचार और कार्यकुशलता की दृष्टि से तुम मुझसे ज़रा आगे निकल गये, लेकिन क्या है कि असल मे हम दोनो एक ही घिसे हुए सिक्के के दो पहलू है: मै सक्रिय बेईमानी, तुम निष्क्रिय ईमानदारी। किसी उद्देश्य के लिए दोनो ही बेकार।"

"......"

"देखो करुणाशकर, मैं उनकी जगह बैठा हूँ इसका मतलब यह नही है कि मैं उनका दुश्मन हूँ। और तुम भी यह मत समझो कि उनका पक्ष लेने मे या इंजीनियरो के सम्मेलन मे दबी जबान से उनका समर्थन करने से तुम उनकी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले हो गये। राष्ट्रीय राजमार्ग मे हम चाहते हुए भी कोई परिवर्तन नही कर सकते, यह एक तथ्य है। फर्क शायद केवल यह है कि मैं इस तथ्य को अपना कैरियर बनाने के लिए बेशर्मी के साथ स्वीकार करता हूँ और तुम इसे शर्मिदगी के साथ स्वीकार करते हुए खुद को यह दिलासा देते हो कि तुमने एक अनुचित चीज के लिए अपने को इस्तेमाल नही होने दिया। मगर सवाल यह है कि तुमने राष्ट्रीय राजमार्ग को सुधारने या बदलने के लिए किया क्या?"

"हाँ, तुमने सच को सच माना और जरूरत पड़ने पर कहा भी। सत्यप्रिय श्रीवास्तव की तरह तुमने राष्ट्रीय राजमार्ग की आलोचना की। लेकिन तुम्हारे द्वारा या स्वयं उन्ही के द्वारा की गयी आलोचना में नया क्या है? कौन नही जानता कि यह सड़क सही नही बनी है? देहाती किसान तक जानते हैं कि बडी-बडी नदियों पर से तो इसे पुल बनाकर गुजारा गया है, लेकिन छोटे नदी-नालों के पानी के निकास की व्यवस्था इसे बनाते समय नही की गयी है। सब अपनी आँखो से देखते हैं कि बरसात में जब बाढ़ें आती हैं तो निकास न मिलने पर पानी का तेज बहाव सड़क पर टक्करें मारता है और उसे तोड़-फोडकर निकल जाता है। कभी यह भी होता है कि सडक के एक तरफ के खेत पानी से भर जाते हैं और दूसरी तरफ के खेत पानी न पहुँच पाने के कारण सूखने लगते हैं तो किसान मौका देखकर सड़क खोद डालते हैं जिससे उस पर गहरी खाइयाँ बन जाती हैं और दुर्घटनाएँ होती हैं।"

"......"

"हाँ, यह भी सही है। बडे लोगो की खींचतान से भी बहुत कबाडा हुआ है। हर प्रभावशाली आदमी चाहता है कि सड़क से उसी को सबसे ज्यादा फायदा हो। गरीब लोगों की लाखों बस्तियाँ चाहे छूट जायें पर बड़े-बडे उद्योगपतियों, जमीदारों, मन्त्रियों, नेताओ और अफसरो के दरवाजे तक सडक जरूर पहुँचनी चाहिए। राष्ट्रीय राजमार्ग पर इतने मोड़, चक्कर और उतार-चढ़ाव इसी वजह से तो बने हैं। एक साफ-सुथरी सड़क वैज्ञानिक ढग से बनती तो क्या ऐसा होता? पिछले महीने मैंने हवाई जहाज से दौरा किया तो देखा, अपना राष्ट्रीय राजमार्ग ऐसा लगता है जैसे कोई साँप लहराता हुआ जा रहा हो।"

"......"

"अजगर कह लो। मगर इस अजगर की आलोचना से क्या हुआ है अब तक? पुराने रिकार्ड देखो जरा, जब यह राजमार्ग बन रहा था तभी कई सडक-इंजीनियरों ने इसकी आलोचना की थी। उन्होंने आँकड़े वगैरह जुटाकर सिद्ध किया था कि कुछ बड़े-बड़े लोगों की सुविधा के लिए बनायी जा- रही

यह सड़क करोड़ों लोगों के लिए मुसीबत पैदा करेगी। इससे लाखों एकड़ उपजाऊ खेत बरबाद हो जायेंगे मगर आम जनता को कोई फायदा नहीं होगा। उनकी आलोचना बिल्कुल सही थी। पिछले तमाम सालों में यह काला अजगर हरी-भरी खेतियों को लीलता गया है। फिर क्या है कि सड़क के लिए जमीनें लेने में पक्षपात भी होता है। बडे-बडे भूस्वामियों को तो अपनी जमीनों के अधिग्रहण के लिए बडे-बडे मुआवजे मिल जाते है, लेकिन छोटे किसान बेचारे अपने मुआवजों के लिए रोते रहते है। करोडों किसान इस सडक के कारण भूमिहीन होकर दूसरों के यहाँ मजदूरी करने को मजबूर हो गये हैं। मगर···"

"······"

"भई, सरकार का काम अपना प्रचार करना है, वह तो करेगी ही। क्या है कि वह तो महँगाई बढाती है और कहती है कि गरीबी दूर कर रही हूँ, काम-धंधे चौपट करती है और कहती है कि बेरोजगारी खत्म कर रही हूँ, असमानता बढ़ाती है और कहती है कि समाजवाद ला रही हूँ। सो, राष्ट्रीय राजमार्ग बनाकर यदि वह थोड़े-से लोगों के फायदे का इंतजाम करती है और कहती है कि इसके जरिए सारे देश मे खुशहाली ला रही हूँ, तो इसमे अजब क्या है? और इस व्यापक प्रचार के आगे सत्यप्रिय श्रीवास्तव जैसे इक्का-दुक्का लोगो के द्वारा की गयी आलोचना का क्या अर्थ है?"

"······"

"नही करुणाशंकर, खाली आलोचना से अब इस देश मे कुछ नही हो सकता। अब तो चाहिए एक्शन। विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण अपनी जगह ठीक है, पर उसके साथ होना चाहिए कुछ काम, जिसका कोई नतीजा निकले। सत्यप्रिय श्रीवास्तव ने इस विभाग का अध्यक्ष बनकर क्या किया? उन्होंने तमाम तथ्य और आँकड़े जुटाकर बताया कि जितना रुपया राजमार्ग की मरम्मत ही मरम्मत मे खर्च किया जाता है, उतने से एक नयी सड़क मजे मे बनायी जा सकती है। मत्रालय की जिन बैठकों मे उन्होंने ये तथ्य और आँकड़े पेश किये, उनमें मैं भी मौजूद था। और मैंने देखा कि सत्यप्रिय श्रीवास्तव तो व्यापक जनहित की आकांक्षा से पूरे भावावेश मे अपना वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं और सुनने वाले उबासियाँ ले रहे हैं। क्यो? इसलिए कि

सरकार जिस राजमार्ग को महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों, विदेशी अतिथियों और पर्यटकों के लिए सुदर और सुखद बनाने का निर्णय ले चुकी है, आप उसी राजमार्ग को बंद कर देने का सुझाव दे रहे हैं। आपसे कहा जा रहा है कि आप इस सडक पर हर दस किलोमीटर की दूरी पर पर्यटक आवास बनायें जहाँ सुदर-सुदर झीले हों, हरे-भरे उद्यान हों, रेस्तराँ और मदिरालय हो, और आप कह रहे है कि यह बेकार की टीमटाम है, कि इस पर खर्च होने वाला पैसा एक नया राजमार्ग बनाने मे लगाया जा सकता है। ऐसी बात भला कौन सुनेगा? माना कि आप एक निहायत गलत चीज का बिल्कुल सही और जरूरी विरोध कर रहे हैं, पर यह तो देखिए कि आपकी बात सुनी भी जा रही है या नही! क्या है कि या तो आप अपनी बात जाकर उन लोगों को सुनाइए जो सुनने के इच्छुक हों, या फिर अनिच्छुक लोगों को इस तरह सुनाइए कि वे सुनने को मजबूर हो जायें।"

"......"

"हाँ, मैंने उनसे बात की थी। एक मीटिंग के बाद जब सब लोग चाय पी रहे थे, मैं उनके पास पहुँच गया। मैंने कहा, 'सर, आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ: आपकी बातें सब सही है पर मुझे लगता है कि मानी नही जायेंगी।'

" 'मैं मनवाकर रहूँगा।' सत्यप्रिय श्रीवास्तव ने दृढ निश्चय के साथ कहा और अगले ही क्षण मुझे लताड़ने लगे। कहने लगे, 'लेकिन तुम मुझसे क्या चाहते हो? जिस तरह तुमने घुटने टेक रखे है, मैं भी टेक दूँ? तुम एक भुच्च देहाती इलाके से आये हो, सबसे पिछडी हुई गरीब जाति के लोगो से तुम्हारा संबध है, इस सडक पर सबसे ज्यादा वे ही लोग मर रहे हैं और तुम यहाँ महानगर मे मंत्रालय की ऊँची कुर्सी पर बैठे उन लोगों की भलाई के नाम पर चंद बड़े लोगों की तफरीह के लिए इसे खूबसूरत बनाने की योजनाएँ बना रहे हो। तिकडम और खुशामद के जरिए उन्नति की सीढियाँ चढ़ते तुम यहाँ तक आ पहुँचे हो और दूसरो को ही नही, खुद को भी यह विश्वास दिलाते रहते हो कि यह व्यवस्था कितनी अच्छी है, जिसमे छोटे से छोटा आदमी भी उन्नति करता हुआ बड़े से बड़े पद पर पहुँच सकता है। लेकिन यह सोचो कि तुम हो क्या? आज तुम्हे किसी वजह से

इस पद से हटा दिया जाये तो तुम क्या रह जाओगे ? और तुम मुझे उपदेश देने की हिम्मत कर रहे हो ?'

"कहते-कहते उनका गोरा चेहरा सुर्ख हो गया। ज्यादा लम्बे नही है वे, पर उस समय मुझे लगा कि उनका कद काफी बड़ा हो गया है। उनके सामने अपना अस्तित्व मुझे बिल्कुल बौना महसूस हुआ। अगले क्षण वे मेरा तिरस्कार-सा करते हुए मेरे पास से हट गये और मत्री महोदय के पास जाकर अपनी बात समझाने लगे। मैं सुन रहा था कि मत्री महोदय उनकी हर बात पर कह रहे है कि 'हाँ-हाँ, आपकी बात बिल्कुल सही है।' लेकिन मैं समझ रहा था कि सरकार सत्यप्रिय श्रीवास्तव की कोई बात नही मानेगी। सच कहूँ करुणाशंकर, यह सोचकर मुझे खुशी हुई थी कि मंत्रालय मे उस समय उन्हे उनके पद से हटाये जाने के बारे मे सोचा जा रहा था। मन ही मन हँसा भी मैं कि खुद महाशय हटाये जाने वाले है और मुझे मेरे पद से हटा दिये जाने की बात कर रहे हैं। तुमसे क्या छिपाना, मुझे उनकी वह बात बहुत बुरी लगी थी और मैंने फैसला कर लिया था कि सरकार उनकी बातें मानना भी चाहे तो मैं नही मानने दूँगा। उन्होने मेरी जाति और औकात बतायी थी, इसलिए मुझे खुशी हुई थी कि एक ऊँची जाति वाला जल्दी ही जलील होने जा रहा है।"

"......"

"हाँ, इसीलिए तो बार-बार मंत्री महोदय के साथ उनकी बैठकें हो रही थी।"

"......"

"नहीं; उनको निकलवाने मे मेरा कोई हाथ नही था। वह परिस्थिति उन्होंने खुद ही पैदा की थी। क्या हुआ कि एक बैठक में उन्होंने राष्ट्रीय राजमार्ग पर बनाये जाने वाले पर्यटक आवासों पर होने वाले खर्च को राजमार्ग के आवश्यक परिवर्तनों मे लगाने का सुझाव मत्री महोदय के सामने रख दिया। मत्री महोदय ने नाराजगी के साथ उनके सुझाव को ठुकरा दिया और सत्यप्रिय श्रीवास्तव ने बौखलाकर अगले दिन सारे तथ्य और आँकड़े देते हुए अखबारों मे एक वक्तव्य दे डाला..."

"......"

"हाँ, वही। अब बताओ, किसी जिम्मेदार अधिकारी को ऐसा करना चाहिए ? फिर तुम्हें पता ही है, उनके वक्तव्य से कैसा तहलका मचा था। मचना ही था । लोग तो यह जानकर बौखलाते ही कि जिस सड़क पर इतनी भयकर दुर्घटनाएँ रोज हो रही हैं, उसकी ऊपरी टीमटाम पर अरबों रुपया विदेशों से कर्ज लेकर खर्च किया जा रहा है। विपक्षी दलों को भी एक हथियार मिल गया और उन्होंने हल्ला मचा दिया कि देश को राष्ट्रीय राजमार्ग की सुंदरता नही, पहले उस पर चलनेवालों की सुरक्षा चाहिए। सुंदरता बनाम सुरक्षा वाला यह विवाद इतना तूल पकड़ गया कि सरकार को दबना पड़ा, सुंदरता के साथ सुरक्षा का नारा देना पड़ा, और सुरक्षा के लिए राजमार्ग पर हर पाँच किलोमीटर की दूरी पर एक सुरक्षा-चौकी बनानी पड़ी।"

"......"

"अरे भाई, सरकार के लिए तो सुरक्षा का एक ही मतलब होता है : पुलिस-फौज..."

"......"

"हाँ, इससे खर्च तो बढ़ना ही था। एक-एक चौकी पर दो-दो आदमी और एक-एक बंदूक का हिसाब लगाओ तो भी लाखों आदमी और हजारों बदूकें हुईं, जबकि बहुत-सी चौकियों पर मैंने देखा, बीस-बीस आदमी और इतनी ही बंदूकें हैं। लेकिन क्या है कि यह सरकारी इंतजाम ठहरा, इसमें राष्ट्रीय राजमार्ग विकास विभाग क्या दखल दे सकता है ? उसे क्यों उसमें दखल देना चाहिए ? मगर सत्यप्रिय श्रीवास्तव तो सरकार से टकराने पर तुले हुए थे। फिर से एक प्रेस-वक्तव्य ठोक दिया कि इतने खर्च से तो चार-चार नये राजमार्ग बनाये जा सकते है। उन्होंने यह भी नही सोचा कि वक्त नाजुक है, सरकार से उनकी तनातनी चल रही है, इसका नतीजा अच्छा नही होगा। मंत्री महोदय उनसे पहले ही चिढ़े हुए थे, उस वक्तव्य को देखकर आगबबूला हो गये। फिर भी उनकी तारीफ करनी पड़ेगी कि उन्होंने सत्यप्रिय श्रीवास्तव को एक मौका और दिया। मुझसे कहा, 'श्रीवास्तव को बोलो, अपने बयान का खंडन करते हुए प्रेस को बोल दे कि राजमार्ग पर सुरक्षा-चौकियाँ जरूरी है।'

"मैंने उसी समय फोन मिलाया और मत्री महोदय का संदेश कह दिया। सत्यप्रिय श्रीवास्तव सुनते ही भडक उठे। मुझे फटकारते हुए उन्होने कहा, 'तुम्हे पता है, तुम्हारी ये सुरक्षा-चौकियाँ क्या कर रही है ? सडक को टूट-फूट से और लोगों की दुर्घटनाओ से बचाना तो दूर, वे मरम्मत का पैसा भी हडप ले रही है। इतना ही नही, उन पर जो लोग तैनात किये गये हैं, उन्होंने समूचे राजमार्ग पर भ्रष्टाचार और आतक फैला दिया है। सडक खोदकर फायदा उठाने वालों से पैसा खाकर उन्हे तो वे अपनी आँखों के सामने सडक खोद लेने देते हैं, लेकिन उस पर चलनेवाले बेकसूर लोगो को तग करते हैं। दुर्घटनाओं की रोकथाम से उन्हे कोई वास्ता नही, लेकिन उनसे फायदा उठाने की पूरी कोशिश करते है। इस इंतजाम से पहले जो दुर्घटनाएँ होती थी उनमें लोग हताहत तो होते थे पर लुटते नही थे। जाकर अपनी आँखों से देखो, अब लुटने भी लगे हैं। वे लोग दुर्घटनाओ मे मरने वालो के कपडे तक उतार लेते हैं, ऊपर से मृत व्यक्तियों के परिवारो को डराते-धमकाते हैं, उनसे पैसा ऐठते है, और नही मिलता तो उन्हें सड़क पर तोड-फोड करने के झूठे मामलों मे फँसाते है। ये है तुम्हारी सुरक्षा-चौकियाँ। और तुम कहते हो कि मैं अपने बयान का खडन करके यह कह दूँ कि ये जरूरी हैं ?'

" 'मैंने तो केवल मंत्री महोदय का सदेश आपको दिया है।' मैंने कहा।

" 'जहन्नुम में जाओ तुम और तुम्हारा मत्री।' उन्होंने बेहद गुस्से मे कहा और फोन बद कर दिया।

"अब तुम ही बताओ करुणाशंकर, ऐसी बातों का क्या नतीजा हो सकता है ?"

"......"

"देखो भाई, मै हूँ सीधा-सादा आदमी। ऐसे बड़े-बड़े मसलो के नैतिक और राजनीतिक पहलुओ पर सोचने के लिए न तो मेरे पास बुद्धि है, न इतनी फुरसत। लेकिन क्या है कि सुरक्षा-चौकियो के बारे मे सत्यप्रिय श्रीवास्तव ने जो कुछ कहा था, सच कहा था। अभी कुछ दिन पहले मैं एक दुर्घटना की जाँच करने गया था। उसमें साठ लोग मरे थे और हैरानी की बात यह थी कि वे साठों लाशें वहाँ नगी पडी थी, जैसे वे तमाम लोग अपने

घरों से नंगे ही यात्रा करने निकल पड़े हों।"

"......"

"हाँ, यही हुआ। एक तरफ से सरकार लुटने लगी, दूसरी तरफ से जनता। अब क्या है कि सरकार तो लुटती रह सकती है, क्योंकि ज्यादा लुटेगी तो ज्यादा टैक्स लगा देगी, नहीं तो बाहर से कर्ज ज्यादा ले लेगी; पर जनता कैसे लुटती रहे? एक बार मुझे एक आदमी मिला। नितांत नंगा वह राष्ट्रीय राजमार्ग पर रोता हुआ चला जा रहा था। एक हाथ से आगे की ओर दूसरे हाथ से पीछे की शर्म ढँके हुए वह अजीब वनमानुस की तरह चल रहा था। आँखों से उसके आँसू बह रहे थे, लेकिन वह उन्हें पोंछ भी नहीं पा रहा था। अपनी लाज बचाये कि आँसू पोंछे? मैंने अपनी जीप रोककर उसका हाल पूछा। पहले तो वह डर के मारे भागने लगा कि मैं कहीं उसके हाथ-पाँव भी न छीन लूँ, पर मैंने थोड़ा दम-दिलासा दिया तो उसने रुककर बताया कि वह पास के गाँव का गरीब किसान है, साइकिल से शहर गया था, कुछ सामान खरीदकर लौट रहा था कि अचानक सड़क पर बनी एक खाई में साइकिल सहित गिर पड़ा। मदद के लिए चिल्लाया तो पास की सुरक्षा-चौकी मे दो आदमी आये और उन्होंने उसका यह हाल बनाकर छोड़ दिया। मैंने उसे जीप में बिठाया और उस सुरक्षा-चौकी पर ले गया। उसकी साइकिल वहाँ खड़ी थी और उस पर उसका सामान अभी तक ज्यों का त्यों बँधा हुआ था। लेकिन मैंने सुरक्षा-चौकी के लोगों से पूछताछ की तो वे कहने लगे कि यह आदमी कोई चोर-उच्चका है, साइकिल इसकी नहीं, बल्कि चौकी के एक सुरक्षाकर्मी की है। उस आदमी ने हजारों कसमे खाईं, साइकिल उसने कब, कहाँ से, कितने मे और किन-किन लोगों के साथ जाकर खरीदी थी, सब बताया, लेकिन वे नहीं माने। मेरे समझाने-बुझाने का, डाँट-फटकार का भी उन पर कोई असर नहीं हुआ। मैंने यहाँ तक कहा कि मैं मंत्रालय मे काम करता हूँ, मंत्री महोदय से कहकर उन्हें सजा दिलवाऊँगा। फिर भी वे नहीं माने। कहने लगे, 'आप जाइए, मंत्री महोदय पूछेंगे तो हम सिद्ध कर देंगे कि साइकिल किसकी है।' आगे बात करना बेकार था, मैंने उस आदमी को उसके हाल पर छोड़ा और बेहद अपमानित महसूस करता हुआ चला आया।"

"......"

"हाँ, मैंने उस खाई को भी देखा। वह उस सुरक्षा-चौकी के पास ही थी। ज्यों ही अपनी जीप स्टार्ट करके उस तरफ बढ़ा, सुरक्षा-चौकी के दो लोग दौड़े हुए गये और उन्होंने फटाफट दो चौड़े फट्टे खाई के ऊपर डाल दिये ताकि मेरी जीप गुजर जाये। मैंने फिर जीप रोकी और उनसे पूछा, 'क्या उस वक्त तुमने ये फट्टे हटा लिये थे जब वह साइकिल वाला आ रहा था?'

" 'हुजूर, आप बड़े आदमी हैं। आप लोगो की सेवा के लिए ही तो हम यहाँ तैनात किये गये हैं।' उनमे से एक ने कहा।

" 'और जनता की सेवा के लिए नही?' उसकी धृष्टता पर मुझे बड़ा गुस्सा आया।

" 'हुजूर, हम भी सरकारी आदमी है, हमारी भी तो सेवा होनी चाहिए।' उनमें से दूसरे ने दाँत निपोरते हुए कहा।

" 'सरकार जनता की सेवा करने के लिए है कि जनता सरकार की सेवा के लिए?' मैंने उन्हे डाँट लगायी तो वे हँसने लगे। सलाम ठोककर उन्होने मुझे आगे बढ़ने का इशारा किया, जैसे कह रहे हों—चल साले, दफ़ा हो यहाँ से, आया बड़ा उपदेशक की दुम! खीझकर मैं चल दिया, लेकिन मेरी जीप-खाई पर से पार हुई ही थी कि उनमे से एक के शब्द मेरे कानों में पड़े, 'ढेड साले, चले आते हैं अफसरी छाँटने!' मेरे जी में आया कि लौट पड़ूँ और उन्हे मारूँ, चाहे खुद मर जाऊँ। लेकिन मै खून का घूँट पीकर चला आया।"

"......"

"और क्या, कहने को राष्ट्रीय राजमार्ग सबके लिए है और सरकार कानून बनाकर सबको उसी पर चलाना चाहती है, लेकिन उस पर लोगो ने जो यह भेदभाव फैला रखा है, उसके बारे मे कोई कुछ नही करता। ऐसे मे कौन राजमार्ग पर चलना पसद करेगा? वही, जो बड़ा आदमी हो। इसीलिए, क्या है कि बड़े-बड़े लोगों के वाहन, देशी-विदेशी कारें, ट्रक-ट्रैक्टर, सरकारी बसें और जीपें तो राजमार्ग की खाइयो पर फट्टों की मदद से सही-सलामत गुजर जाती है, लेकिन गरीब पैदल चलने वालों, साइकिल

सवारों और गाड़ीवानों की मौत है। उनके लिए कोई सुरक्षा नही है, वे खाइयो मे गिरकर मरते हैं और लुटते भी हैं।"

"......"

"ठीक कहते हो, इसीलिए यह हुआ कि उनमें से बहुत-से लोगों ने आतंकित होकर राजमार्ग पर चलना ही छोड़ दिया। अपने गंतव्यों पर पहुँचने के लिए उन्होंने अपने ढंग के हज़ारों कच्चे रास्ते बना लिये। मगर क्या है कि इससे राजमार्ग को एक नया खतरा पैदा हो गया। इक्का-दुक्का आदमी पैदल सडक पार करे तो ज्यादा फर्क नही पड़ता, लेकिन जब लोगो की कतारें, इक्के-ताँगे और बैलगाड़ियाँ सड़क को काटती हुई गुजरने लगें तो सडक पर चाहे जितना बढ़िया मैटीरियल लगा हो, वह टूटने लगती है। और इस सडक पर तो मैटीरियल भी कैसा लगा है, तुम जानते हो। इस-लिए लोगो के बनाये हुए रास्तों से राजमार्ग जगह-जगह से कटने लगा, उस पर दगड़े बनने लगे और हालत पहले से भी बदतर हो गयी। सत्यप्रिय श्रीवास्तव को इस चीज के बारे में कुछ करना चाहिए था, लेकिन उन्होंने किया तो कुछ नही, राष्ट्रीय राजमार्ग की अपनी वैकल्पिक योजना फिर से सरकार के सामने प्रस्तुत कर दी और इस चीज को उसकी पुष्टि मे एक और तर्क के रूप में सामने रखा। सरकार उनसे पहले से ही तंग आयी हुई थी, उनकी यह धृष्टता उससे बरदाश्त नही हुई और उन्हे राजमार्ग की समस्याओं को हल करने मे असमर्थ और अयोग्य करार देकर अध्यक्ष-पद से हटा दिया गया।"

"......"

"करुणाशंकर, क्या है कि तुम एक मामूली-सी बात नही समझते: इंजीनियर चाहे कितना ही बड़ा हो, समूची व्यवस्था को नही बदल सकता, और सत्यप्रिय श्रीवास्तव समूची व्यवस्था को ही बदलना चाहते थे। यह कैसे होता? वे कोई क्रान्तिकारी होते, उनके पीछे कोई ज़बर्दस्त संगठन होता, तब बात और होती। मगर वे लड़ रहे थे अकेले, खाली विज्ञान के बल पर। लेकिन विज्ञान अपने आपमे क्या है? चाबियों का वह गुच्छा जिसमें हर ताले की चाबी होती है, पर उससे ताला तभी खुल सकता है जब ताले तक आपकी पहुँच हो। जब तक पहुँच थी, उन्होने बड़ी-बड़ी समस्याएँ

सुलझायी, लेकिन अब उनकी पहुँच कहाँ तक रह गयी थी ? उन्हें शायद यह गुमान भी था कि उनके बिना सरकार का काम नही चलेगा । पर दुनिया मे ऐसा अपरिहार्य व्यक्ति कोई नही होता । सरकार ने उन्हें हटा दिया और अनुसंधान विभाग से रिपोर्ट माँगी कि लोग राष्ट्रीय राजमार्ग पर क्यों नही चलते, अपने बनाये हुए कच्चे रास्तो पर क्यो चलते है ? रिपोर्ट आयी कि यह सारी गड़बड़ सुरक्षा की दो परस्पर विरोधी परिभाषाओं के चलते हो रही है । एक परिभाषा सरकार करती है और राजमार्ग की सुरक्षा पर दिन-दूना ज्यादा खर्च करती है। दूसरी परिभाषा जनता करतो है और अपनी सुरक्षा के लिए नित नये रास्ते निकालती है । अब सरकार यह कैसे बरदाश्त कर सकती थी कि लोग उसकी सुरक्षा को ठेंगा दिखाते हुए अपनी सुरक्षा आप करने लगें ?"

"......"

"बिल्कुल सही कहा तुमने । राष्ट्रीय राजमार्ग सुरक्षा कानून इसीलिए बनाया गया । लोगो के बनाये हुए कच्चे रास्तों को अवैध और राजमार्ग को काटते हुए चलना अपराध घोषित कर दिया गया । राष्ट्रीय राजमार्ग पर चलना सबके लिए अनिवार्य कर दिया गया । मगर लोग जाने कैसे हो गये हैं कि इस कानून से बहुत थोड़े ही लोग डरे, बाकी पहले की तरह राजमार्ग से बचकर अपने बनाये हुए रास्तों पर चलते रहे । वैसे, लोगो का भी क्या दोष? दुर्घटनाएँ रुकी नही, लूटपाट बद नही हुई। हुआ सिर्फ यह कि लोगों की पकड़-धकड़ के लिए सुरक्षा-चौकियों की सख्या और उन पर लोगों तथा बंदूकों की संख्या काफी बढ़ गयी । उधर पकड़े गये लोगो से तमाम जेलें भर गयी और नयी जेलों के निर्माण और कैदियों को खिलाने-पिलाने पर होने वाला भारी खर्च एक नयी समस्या बन गया । तब सरकार को चिन्ता हुई और उसने देश के प्रमुख सड़क-इंजीनियरो का वह सम्मेलन बुलाया ।"

"......"

"हाँ, वही, जिसमें तुमने सत्यप्रिय श्रीवास्तव की वकालत करते हुए यह सुझाव दिया था कि राष्ट्रीय राजमार्ग का सुधार और विकास इसके मूल ढाँचे में आवश्यक परिवर्तन करके ही हो सकता है । लेकिन यार, अभी तक मेरी समझ मे नही आया कि उस दिन तुम इतनी बड़ी बेवकूफी कैसे कर

बैठे ? तुम्हे डर नही लगा कि ऐसे हालात में कुछ भी हो सकता था तुम्हारे साथ ? तुम्हे अपने बाल-बच्चों का भी खयाल नही आया ? मैं तो भाई, तुम्हारे लिए डर गया था। लेकिन तुम अगली बैठक मे वहाँ दिखायी नही दिये ? कहाँ चले गये थे ?"

"......."

"अच्छा-अच्छा, तब तो तुमने ठीक ही किया। हाँ, जब कोई तुम्हारी बात सुनने को तैयार ही नही, तो खामखाह् मक्कू बनने से क्या फायदा।"

"......."

"दूसरी बैठक मे वही हुआ जो होना था। मैंने तुम्हें बताया न, वहाँ तमाम इंजीनियर सत्यप्रिय श्रीवास्तव के हटने से रिक्त हुए पद के प्रत्याशी थे। उन्होंने उनकी खूब आलोचना की। झूठ क्यो बोलूँ, मैंने भी की। मगर आलोचना से ज्यादा जोर मैंने अपने ठोस सुझाव पर दिया। सवाल था कि राष्ट्रीय राजमार्ग पर होने वाली तोड़-फोड और दुर्घटनाओं को रोकने के लिए क्या किया जाये ? तुम्हारा जवाब तो कोई जवाब था ही नही, दूसरों के पास भी कोई माकूल जवाब नहीं था। कुछ सुझाव आये जरूर, मसलन मरम्मत पर खर्च बढाया जाये, सुरक्षा-चौकियो की संख्या और बढायी जाये, सुरक्षा-कानून को और ज्यादा सख्ती से लागू किया जाये, वगैरह। लेकिन ऐसे सुझाव देने वाले बेवकूफो को यह नही सूझा कि इनमें सरकार की असफलता की आलोचना निहित है और उसके सिरदर्द का कोई इलाज नही है। मैं गौर से मंत्री महोदय का चेहरा देख रहा था। ऐसे सुझाव सुनकर उनकी त्योरियाँ चढ जाती और चेहरा स्याह पड़ जाता। इसलिए जब मेरी बारी आयी तो मैंने कहा, 'राष्ट्रीय राजमार्ग का सुधार और विकास निरंतर हो रहा है और इसके लिए सरकार को तथा विशेष रूप से हमारे मंत्री महोदय को बधाई दी जानी चाहिए। सरकार उसकी सुन्दरता और सुरक्षा का पूरा ध्यान रख रही है। फिर भी यदि दुर्घटनाएँ होती हैं तो दोष सरकार का नही, राजमार्ग पर चलने वालो का है। अत. मैं जोरदार शब्दो मे यह सुझाव देना चाहता हूँ कि दुर्घटनाओ मे हताहत होने वाले लोगो के प्रति कोई सहानुभूति न बरती जाये, बल्कि उनको या उनके परिवार वालो को कठोर आर्थिक दड दिया जाये। जिस

इलाके में दुर्घटनाएँ ज्यादा होती हो उस इलाके के तमाम लोगों को सामूहिक अर्थ-दंड दिया जाये। उचित समझा जाये तो इसको राष्ट्रीय राजमार्ग सुरक्षा कर का नाम दिया जा सकता है, और इस कर की वसूली पूरी सख्ती के साथ होनी चाहिए। जो लोग राष्ट्रीय राजमार्ग पर तोड़-फोड करते पाये जाये, उन्हें पकडने और जेल मे बंद करने के बजाय देखते ही गोली मार दी जाये, और उनकी सारी सपत्ति जब्त कर ली जाये। इस प्रकार सरकार को न तो नयी जेलें बनवानी पडेंगी, न कैदियों को खिलाने-पिलाने पर खर्च करना पडेगा, और जो अपार धन प्राप्त होगा उसका उपयोग राजमार्ग को सुन्दर बनाने मे किया जा सकेगा।"

"......"

"शर्म? शर्म क्यों आती मुझे? मुझे मालूम था कि मेरा सुझाव मान लिया गया तो इसकी मार सबसे ज्यादा गरीब लोगों पर और मेरी बिरादरी वालों पर पड़ेगी। लेकिन मैं जानता था कि इस माहौल मे ऐसा ही सुझाव माना जा सकता है। क्या है कि मैं एक परीक्षा दे रहा था। मुझ से एक प्रश्न पूछा गया था और पास होने के लिए मुझे पाठ्यक्रम के अनुसार उत्तर देना था। तुम्हारी पाठ्यपुस्तको मे लिखा रहता है—हमारे देश मे जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन होता है। तुम अच्छी तरह जानते हो कि यह सच नही है। फिर भी परीक्षा मे पूछे गये प्रश्नो के उत्तर देते समय तुम यही बात लिखकर आते हो या नही? तब तुम्हे शर्म आती है?"

"......"

"फिर क्या, मेरा सुझाव सुनते ही मंत्री महोदय मुस्कराने लगे और उन्हे मुस्कराते देख वहाँ उपस्थित सारे इंजीनियर तालियाँ बजाने लगे, चाहे मन ही मन वे मेरे प्रति ईर्ष्या और द्वेष से जल-भुन रहे हों। बाद मे जो थोडी-सी चर्चा और हुई उसमें मेरे सुझाव को बार-बार सही बताया गया और अत मे मंत्री महोदय ने भी उसका समर्थन किया। उन्होने मुझे 'अत्यत कुशल इंजीनियर के साथ-साथ अत्यन्त योग्य प्रशासक' बताते हुए मेरी प्रशसा की। मैं मन ही मन खुद को शाबाशियाँ देता हुआ शान्त बैठा मुस्कराता रहा। मुझे निश्चय हो गया कि सत्यप्रिय श्रीवास्तव की जगह

मैं ही नियुक्त किया जाऊँगा, और वही हुआ।"

"......"

"नियुक्ति पर लोगों की राय? क्या है कि प्रतिक्रियाएँ हमेशा दो प्रकार की होती हैं। अनुकूल प्रतिक्रियाओं से आप अपना औचित्य सिद्ध करते हैं, प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं को बकवास मानकर भुला देते हैं। लेकिन मुझे अनुकूल प्रतिक्रियाएँ ही ज्यादा मिली। विदेशों तक से मुझे बधाई-संदेश मिले। जिन देशों के राष्ट्रीय राजमार्गों की हालत खराब थी, उन्होंने सबसे ज्यादा बधाइयाँ भेजी। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह कि पश्चिम के एक बहुत ही समृद्ध देश से भी मुझे बधाई-संदेश मिला। ठहरो, वह मेरी मेज की दराज मे यही पड़ा है, तुम्हे दिखाता हूँ। यह देखो, लिखा है— आप जो महान प्रयोग अपने देश मे करने जा रहे हैं उससे हमें आशा है कि आपके देश को ही नही, अन्य गरीब देशों को भी बहुत लाभ होगा।"

"......"

"मुझे मालूम था, तुम व्यंग्य ही करोगे। ठीक है, करो। लेकिन करुणाशकर, है यह एक प्रयोग ही, और इसमें मुझे तुम्हारी मदद चाहिए। तुम अपने आप तो मेरे पास आते नही, इसीलिए मैंने विशेष रूप से गाडी भेजकर तुम्हें बुलाया है।"

"......"

"किस्सा यह है यार, कि मैंने सत्यप्रिय श्रीवास्तव की बातों का खडन करते हुए यह प्रचार तो शुरू करा दिया है कि राष्ट्रीय राजमार्ग बिल्कुल दुरुस्त है, उस पर चलने मे कोई खतरा नही है, बल्कि उसी पर चलने में लोगों की भलाई है। लेकिन क्या है कि जनता अब ऐसी बातों पर विश्वास नही करती। मुझे कुछ करके दिखाना होगा, और कुछ कर दिखाने के लिए मुझे तुम जैसे किसी योग्य साथी की बेहद जरूरत है। सत्यप्रिय श्रीवास्तव भी तुम्हें इस विभाग मे लाना चाहते थे। इस आशय की एक नोटिंग मैंने उनकी एक फाइल मे देखी है। उसमे उन्होंने तुम्हारी बड़ी तारीफ लिखी है और सरकार से अनुरोध किया है कि वह तुम्हें इस विभाग में नियुक्त करे। यह फाइल सरकार तक पहुँचती, इसके पहले ही वे यहाँ से चले गये। लेकिन मैं इस मामले को आगे बढ़ाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि तुम यहाँ

आओ।"

"......"

"नही, इनकार मत करो करुणाशकर। रिक्त स्थान का विज्ञापन मैंने निकलवा दिया है। लो, यह कागज-कलम लो और यही बैठकर आवेदनपत्र लिख दो। बाकी सब मैं देख लूंगा। तुम मेरे विशेष सलाहकार रहोगे, लेकिन तुम्हारा पद और वेतन मेरे समान ही होगा। हालांकि इसके लिए मुझे थोडी जोड-तोड़ करनी पड़ेगी। सम्मेलन मे वैसे तुमने कोई खास आपत्तिजनक बात नही की थी, फिर भी हो सकता है, सरकार ने कुछ खयाल किया हो। पर तुम चिंता मत करो, मैं सब ठीक कर लूंगा। तुम श्रमदान योजना मे रहे हो, यह बात भी तुम्हारे पक्ष मे जायेगी।"

"......"

"सोच लो करुणाशंकर, यह कोई मामूली पद नही है। सिर्फ चार दिन पहले विज्ञापन निकला है और आज तक सैकड़ो आवेदनपत्र आ चुके है, जबकि इतनी योग्यता और अनुभव वाले इंजीनियर ढूंढे नहीं मिलते। सिफारिशें भी आने लगी है। बड़े-बड़े अफसरों, नेताओं, मंत्रियों और देशी-विदेशी उद्योगपतियों ने अभी से अपने-अपने प्रत्याशियों की पैरवी शुरू कर दी है। मेरी पत्नी और बेटों-बेटियों को मिलने वाले उपहारों से मेरा घर अभी से भरने लगा है। सबसे अच्छी और सबसे महँगी शराबें, जिनके नाम तक मैंने नही सुने थे, मुझे पार्टियों मे पीने को मिलने लगी हैं। तुम कल्पना कर सकते हो कि इस भारी, बेडौल, स्याह काले अधेड माधोप्रसाद में सुन्दर युवतियों की क्या दिलचस्पी हो सकती है! लेकिन परसो से ही देख रहा हूँ, दो सुन्दरियां अचानक मुझसे निकटता बढ़ाने की कोशिश कर रही हैं। मैं सब समझ रहा हूँ। यह नियुक्ति मेरी ही सिफारिश पर होनी है न!"

"......"

"हां, यह सवाल तुमने ठीक पूछा। एकाएक तुम्हारी जरूरत मुझे क्यों पड़ गयी? दोस्त, जितनी बेबाकी से तुमने यह सवाल पूछा है, उतनी ही बेबाकी से इसका जवाब मुझे देने दो। क्या है कि मैं ईमानदारी से चाहता हूँ कि सत्यप्रिय श्रीवास्तव के काम को, उनकी लड़ाई को आगे बढ़ाने वाला

कोई आदमी यहाँ जरूर रहना चाहिए, और मेरी जानकारी मे यह आदमी केवल तुम ही हो, करुणाशंकर ! तुम मुझ पर अविश्वास कर सकते हो, और यह भी सम्भव है कि जब तुम यहाँ आ जाओ तो मुझे तुम्हारी किन्हीं बातो का विरोध भी करना पड़े, क्योंकि मैं सत्यप्रिय थीवास्तव नही हूँ। फिर भी मैं तुम्हें यहाँ लाना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि यह एक जबर्दस्त अंतर्विरोध है। लेकिन क्या है कि अपनी तमाम बुराइयो के बावजूद मैं आदमी हूँ और मैं अपनी अंतरात्मा को धोखा नही दे सकता जो बार-बार मुझे धिक्कारती है और कहती है कि 'माधोप्रसाद, तू क्या बन सकता था और क्या बनकर रह गया।"

"......"

"तुम मुस्करा रहे हो ? मुस्करा लो। मैं हूँ ही इस लायक कि मुझ पर हँसा जाये। मुझे खुद कई बार अपने ऊपर हँसी आती है। लेकिन मैं तुम्हारी तरह खुश होकर नही हँस सकता। अपने ऊपर हँसते हुए मुझे रोना आ जाता है। जब मैं अपनी जिंदगी के बारे मे सोचता हूँ तो एक तरफ यह देखकर मुझे खुशी होती है कि मुझ जैसा आदमी इस समाज में जो कुछ भी उपलब्ध कर सकता था, मैंने कर लिया। लेकिन दूसरी तरफ यह देखकर मुझे धक्का लगता है कि मैं जिंदगी में जो-जो चाहता था, उसमे से कुछ भी तो नही बन पाया। आज मेरे पास मेरा अपना अर्जित किया हुआ क्या है ? जो कुछ है, दूसरों के आगे हाथ पसार कर गिडगिड़ाते हुए माँगी हुई भीख है। अभी थोडी देर पहले मैं तुम्हारी अव्यावहारिकता के लिए तुम्हे लताड़ रहा था, तुमसे कह रहा था कि तुम जीवन मे कुछ नही कर पाये और अपना उदाहरण दे रहा था कि देखो, मैं कहाँ से कहाँ जा पहुँचा। हो सकता है, कल वैसा ही प्रसंग आने पर मैं फिर वैसी ही बातें करूँ। मगर जब मैं एकांत मे अपने आपसे पूछता हूँ कि मैंने जिंदगी-भर क्या किया, तो अपनी उपलब्धि के नाम पर एक बड़ा-सा सिफर नजर आता है, जिसमे मैं देखता हूँ कि रेल और सड़क से दूर, दुनिया-भर की उन्नति से कटा हुआ, बेहद पिछड़ा हुआ एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ मैं पैदा हुआ था, और जिस गरीब पिछड़ी हुई जाति में पैदा हुआ था, वह आज भी उतनी ही गरीब और पिछड़ी हुई है। मेरे माँ-बाप तो अब नही रहे, लेकिन उस गाँव मे अभी

भी मेरे चाचा-ताऊ रहते हैं, भाई-भतीजे रहते हैं, कुछ बच्चों का मैं बाबा-दादा भी बन गया हूँ। मुझे मालूम है, वे मुझे याद करते हैं और मेरे बारे में शान से छाती फुलाकर बात करते हैं कि मै उनके बीच पैदा हुआ हूँ और उन्नति करता हुआ कहाँ से कहाँ जा पहुँचा हूँ। लेकिन जब सोचता हूँ कि उनके लिए मैंने क्या किया है, तब मुझे महसूस होता है—चाहे एक क्षण के लिए ही हो—कि मेरी तमाम उपलब्धियाँ कितनी निरर्थक हैं। क्या है कि मेरे अपने लोग वहाँ आज भी घोर दरिद्रता मे बेहद दलित और अपमानित जीवन जीते है। गालियाँ और मार खाते है। सामूहिक हत्याओं और बलात्कारों की यन्त्रणाओं से गुजरते है। आग मे जिंदा जला दिये जाते है। यहाँ तक कि छोटे-छोटे मासूम बच्चों को जूते की ठोकर से उछालकर आग की लपटों में झोक दिया जाता है। जब यह खयाल आता है, मेरी इच्छा होती है कि एक सीधी सड़क बनाऊँ और उस पर दौडता हुआ अपने गाँव जा पहुँचूँ, अपने लोगो को उस नरक मे मुक्त करूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि जीने का जो ढंग मैंने अपना लिया है उसके चलते यह कभी सम्भव नही होगा। होगा केवल यह कि मैं एक उदाहरण के रूप मे इस्तेमाल होता रहूँगा कि इस व्यवस्था मे एक छोटा आदमी भी बडा बन सकता है। और अपने इस बड़प्पन को बनाये रखने के लिए मै अपने लोगो के शोषण और दमन की योजनाओं मे सहायक होता रहूँगा।"

"......"

"नही-नही, तुम्हें मुझसे माफी क्यो माँगनी चाहिए? मै कोई फरिश्ता नही हूँ। मैंने अपने स्वार्थ से तुम्हे यहाँ बुलाया है। मैं तुम्हारी मदद से इस पद पर बना रहना चाहता हूँ। क्या है कि सरकार मेरे सुझावों पर अमल करने लगी है। अब वह राष्ट्रीय राजमार्ग पर होने वाली दुर्घटनाओ मे हताहत लोगों के परिवारों को रुपया नही बाँटती, उन पर जुरमाना ठोकती है। सब लोग राजमार्ग पर ही चले, इस कानून को पूरी सख्ती से लागू किया जा रहा है। अपने बनाये हुए कच्चे रास्तो पर चलने वालो को इतना कठोर आर्थिक दड दिया जाता है कि उनके झोंपडे और टीन-कनस्तर तक बिक जाते है। शारीरिक और मानसिक यन्त्रणाएँ दी जाती हैं सो अलग। राजमार्ग को काटते हुए गुजरने वालों को देखते ही गोली मार देने के आदेश दे दिये

गये हैं। लेकिन करुणाशंकर, इन सब उपायों से भी कोई बात बन नही पा रही है। लोगों को जाने क्या हो गया है, अब वे किसी चीज मे नही डरते। कानून को कुछ समझते ही नही। मर-मिटते हैं पर अपने लिए रास्ते अब भी बनाते हैं, राजमार्ग को काटते हुए अब भी गुजरते हैं। सड़क बराबर टूट रही है। दुर्घटनाएँ बदस्तूर हो रही हैं। लोगों में आक्रोश बढ़ रहा है। वे सरकार को गालियाँ दे रहे हैं और मुझे मेरे पद से हटाये जाने की माँग कर रहे हैं। इधर मेरे विभाग में भी मेरी हालत बड़ी खराब है। क्या है कि मैं हर तरह से अपने ऊपर और नीचे वालों को खुश रखने की कोशिश करता हूँ। फिर भी मेरा विरोध होता है। जाति के आधार पर विभाग के मामूली कर्मचारी भी धृष्टतापूर्वक मेरी अवज्ञा करते हैं। ऊँची जातियों वाले सब लोग एकजुट होकर मुझे यहाँ से खदेड़ देना चाहते हैं। सत्यप्रिय श्रीवास्तव के कट्टर दुश्मन भी उनके स्थान पर मेरी नियुक्ति को जातिवादी रंग देकर मुझे हटाने की राजनीति खेल रहे हैं। बताओ, इन परिस्थितियो मे मैं यहाँ कितने दिन टिक सकता हूँ?"

"......"

"सहानुभूति के लिए शुक्रिया, लेकिन भाई, कोरी सहानुभूति से काम नही चलेगा। तुम्हें मेरी सहायता भी करनी पड़ेगी। अब क्या है कि मामला केवल पद पर बने रहने का ही नही है, अब तो मेरी जान पर आ बनी है। तुम्हारे आ जाने से एक तो यह होगा कि मेरे विरुद्ध जातिवादी षड्यंत्र कुछ कम होंगे क्योंकि तुम ब्राह्मण हो और जात-पाँत मे विश्वास भी नही करते हो। दूसरी बात यह है कि तुम ईमानदार हो और अब इस विभाग को ईमानदार लोग ही डूबने से बचा सकते हैं।"

"......"

"हँसने की बात नही है भाई, मैं सच कह रहा हूँ। भ्रष्टाचार पर टिकी हुई व्यवस्था अंततः खुद को ही खाने लगती है। तुम्हे पता है, सुरक्षा-चौकियों ने राष्ट्रीय राजमार्ग पर जो भ्रष्टाचार फैलाया, वह कहाँ तक पहुँच गया है? कल तक वे लोग गरीबों को ही लूटते थे। उनके अंदर इतनी कर्तव्यपरायणता जरूर थी कि महत्त्वपूर्ण देशी-विदेशी लोगों की कारों, ट्रकों-ट्रैक्टरों और सरकारी वाहनो को खाइयों पर फट्टे-वट्टे डालकर सही-

ग़ामत गुजार दिया करते थे। लेकिन अब हालत इतनी खराब हो गयी है कि ये सब भी दुर्घटनाग्रस्त होने लगे हैं। मालूम है, खुद मेरे साथ क्या हुआ ? वह दुर्घटना, जिसका समाचार अखबारो मे छपा है और जिसके बारे मे तुमने यहाँ आते ही पूछा था, मुझ पर क्या असर छोडकर गयी है, मैं ही जानता हूँ। मेरा चेहरा जाने कैसे सही-सलामत बच गया है, लेकिन बाकी सारे शरीर पर चोटे ही चोटे हैं। कपडो मे उन्हे ढाँपे किसी तरह यहाँ बैठा हूँ, लेकिन बैठा ही हूँ, रीढ की हड्डी मे जाने क्या हो गया है कि मुझसे खड़ा नही हुआ जाता।"

"......"

"हुआ यह कि मै परसो एक पर्यटक आवास का निरीक्षण करने गया था। मंत्री महोदय के कोई विदेशी मेहमान आने वाले है। इक्कीस तारीख को वे राजमार्ग से यात्रा करेगे और रास्ते मे वहाँ थोडी देर विश्राम करेगे। सो देखने गया था कि वहाँ सब-कुछ ठीक-ठाक है या नही। अस्सी किलोमीटर जाकर वापस आना था, इसलिए मैंने ड्राइवर से तेज चलने के लिए कह दिया। रास्ते मे तीन-चार खाइयो पर तो फट्टे बिछे हुए मिले और मेरी कार आराम से गुजर गयी, लेकिन थोडी दूर और बढी कि भचीड खाकर खाई मे! ईश्वर की कृपा से मैं तो बच गया पर मेरा ड्राइवर मारा गया। कुछ देर बाद सुरक्षा-चौकी वाले लोग आये। मैं आधी बेहोशी मे था, और मुझसे बोला नही जा रहा था, फिर भी मैने उन्हे पहचान लिया। सुरक्षाकर्मी ही थे। लेकिन उन्होने मुझे मेरी टूटी-पिचकी कार मे से बाहर नही निकाला। कार के अन्दर हाथ डालकर मेरा पर्स, घड़ी, पेन, चश्मा सब कुछ निकाल लिया। मेरी बोलती तो बद थी ही, भय से आँखे भी बद हो गयी। मुझे वह किसान दिखायी देने लगा जो अपनी साइकिल सहित ऐसी ही किसी खाई मे गिर पडा था। गनीमत रही कि मुझे उन्होंने नगा नही किया।"

"......"

"फिर पता नही कितनी देर बाद सडक पर काम करने वाले कुछ मजदूरो ने मुझे खाई से निकाला। उन्होने मुझे पहचान लिया। उनमे से एक-दो शायद मेरी जाति के भी थे। खाई से निकालकर वे मुझे अस्पताल

ले गये। मरहम-पट्टी कराने के बाद मुझे मेरे घर तक भी पहुँचा गये लेकिन उन्होंने मुझसे कोई बात नहीं की। मेरी चाय-वाय पीना भी मंजूर नहीं किया। मैंने आग्रह किया तो उनमें से एक बोला, 'रहने दो बाबू जी तुम्हारे कानूनों से ही हमारा पेट बहुत भरा हुआ है।' मैं कुछ कहूँ कि उनमें से दूसरा बोल उठा, 'आज आप अपना ही बनाया हुआ कानून भूल गये कि इस सड़क पर खाई में गिरना जुर्म है!' और तीसरे ने कहा, 'अपना आदमी समझकर छोड़ दिया है बाबूजी, नहीं मन तो यह था कि तुमको सुरक्षा-चौकी पर ले जायें। वे लोग तुम पर जुरमाना ठोकते और तुम्हारे बरतन-भाँडे बिकते तब तुम्हें मालूम होता कि क्या कानून बनाया है।'"

"......"

"हाँ, सोचो, यह हालत हो गयी है! मजदूर लोग ठीक कहते थे। जब मेरे साथ यह हो सकता है तो उनके साथ क्या-क्या नहीं होता होगा!"

"......"

"तुमने ठीक ही सुना है। मैंने भी पता किया था। क्या है कि ऐसी दुर्घटनाएँ कई बड़े-बड़े लोगों के साथ हो चुकी हैं। यों हम लोग शिकायती चिट्ठियों की परवाह नहीं करते, रोज हजारों आती हैं और रद्दी में चली जाती हैं, लेकिन अपने साथ हुई दुर्घटना के बाद मुझे लगा कि उनमें कुछ महत्वपूर्ण लोगों की शिकायती चिट्ठियाँ भी जरूर होती होंगी। इसलिए मैंने कल की डाक में आयी हुई ऐसी चिट्ठियाँ छँटवायीं। मैं घर में पड़ा आराम कर रहा था, शाम को मेरा सहायक एक मोटी फाइल लेकर घर पहुँचा और मैंने देखा कि उसमें कई उद्योगपतियों, भूस्वामियों, ऊँचे अधिकारियों, यहाँ तक कि दो बड़े मन्त्रियों तक की चिट्ठियाँ थीं जिनके साथ ऐसी दुर्घटनाएँ हुई थीं और जिन्होंने लिखा था कि राष्ट्रीय राजमार्ग को सुधारने के लिए अवश्य ही तुरत कुछ किया जाना चाहिए। उन्हें पढ़कर मैं भीतर तक हिल गया। रात-भर नींद नहीं आयी। सुबह के वक्त जरा आँख लगी तो एक भयानक सपना देखा: मैं तेजी से घूमते हुए एक बड़े चकडोल पर बैठा हूँ। तुम कभी उस पर बैठे हो? ऊपर से जब तुम्हारा झूला नीचे आता है तो अपने भीतर तुम्हें कैसी भयावह सनसनी महसूस होती है! मगर वहाँ तुम जानते हो कि यह खेल है, तुम गिरोगे नहीं, नीचे

जाकर फिर ऊपर चढ़ने लगोगे। लेकिन मैंने क्या देखा कि मैं उस पर से गिर पड़ा हूँ, मेरे नीचे एक अतहीन गहरी खाई है और मैं उसमें बड़ी तेजी से गिरता जा रहा हूँ। मेरे मुँह से चीख निकल गयी और मैं जाग गया। और तुम विश्वास नहीं करोगे करुणाशंकर, जाने क्यों आँख खुलते ही सबसे पहले मुझे तुम्हारा ध्यान आया।"

".. . ..."

"नियति? करुणाशंकर, तुम इस हालत में भी मेरी नियति बताकर मुझ पर व्यंग्य कर रहे हो? लेकिन दोस्त, क्या है कि तुम्हारी नियति भी मुझसे भिन्न नहीं है। कल को ऐसी दुर्घटना तुम्हारे साथ भी हो सकती है, क्योंकि तुम भी इसी राजमार्ग पर काम करते हो। इसलिए परिस्थिति को समझो और कुछ करो।"

'कथन', मई-जून 1982

शहर सुन्दर है

छोटे भाई ओमप्रकाश की चिट्ठी पढ़कर रामसेवक चिंतित हो गया। बाहर हुडदंग मचाते लड़कों को डाँटकर अन्दर बुलाती हुई सरोज को उसने जोर से पुकारा और उसके आने पर कोई बुरी खबर सुनाने के अन्दाज मे बोला, "ओमप्रकाश बाल-बच्चों के साथ एशियाड देखने आ रहा है।

"कब आयेंगे?" सरोज का चेहरा मुरझाने के बजाय खिल उठा।

"तारीख बाद मे लिखेगा।" रामसेवक ने कुछ नाराजगी के साथ कहा, जैसे कह रहा हो कि इस खबर में खुश होने की क्या बात है?

सरोज उसके स्वर का अभिप्राय समझ गयी। बोली, "तो इतने परेशान क्यों हो रहे हो? उन दिनों तो दिल्ली मे सभी के यहाँ लोग आयेंगे। तुम चिंता मत करो, मैंने इन्तजाम कर लिया है।"

"क्या इन्तजाम?"

"मुझे पहले से मालूम था कि देवरजी जरूर आयेंगे। खुद खिलाड़ी ठहरे, खेल देखने के शौक़ीन भी हैं। पिछली बार क्रिकेट का मैच देखने नही आये थे?"

"वह तो ठीक है, लेकिन…।"

"खर्च के लिए कह रहे हो? उसकी चिन्ता मुझ पर छोड दो। जब से यह एशियाड होने की बात शुरू हुई है, तभी से थोड़ा-थोड़ा पैसा इस खर्च के लिए बचाकर रखती रही हूँ।"

"अरे, मैं पैसे की बात नहीं कर रहा हूँ।" इस बार रामसेवक सचमुच पत्नी की नासमझी पर खीझ गया, "बात को समझती तो हो नही, अपनी ही हाँके जाती हो। मैं यह कह रहा हूँ कि पिछली बार की बात और थी। तब हम सरोजिनी नगर में रहते थे। मकान छोटा था पर इलाका अच

था। यहाँ वे लोग कैसे रहेंगे ?"

"क्यों ? यहाँ इन्सान नहीं रहते ?" अब सरोज भी चिढ़ गयी, "आदमी जहाँ रहेगा वहीं अपने मेहमानों को ठहरायेगा। अगर तुम्हारी बेइज्जती होती है तो अशोका होटल में इन्तजाम कर दो उनका। और उनका ही क्यों, जब भी कोई आये उसे वहीं ठहराओ।'

यह सुनकर रामसेवक ने ऐसी नजर से सरोज को देखा जैसे कह रहा हो कि जाओ, अपना काम करो, तुमसे मगज मारना बेकार है। सरोज ने अनकहा समझ लिया और उपेक्षा से मुँह बिचका कर कमरे से निकल आयी।

तब तक दोनों लड़के बाहर से आ चुके थे और छोटा लड़का चप्पल सहित कीचड़ में सने हुए पैर को बरमे पर धो रहा था। बड़ा लड़का बरमा चला कर उसके लिए पानी खींच रहा था। सरोज ने पति के साथ हुई नोक-झोंक की परवाह न करते हुए लड़कों को सूचना दी, "ओम चाचा की चिट्ठी आ गयी है। एशियाड देखने आयेंगे।"

"बोम्मारा !" बड़ा लड़का खुशी से चिल्लाया, "अब आयेगा मजा। पापा ने तो यह कहकर छुट्टी कर दी थी कि टी० वी० पर देख लेना।"

छोटा भी उत्साह में आ गया, "खेल देखने का मजा तो ओम चाचा के साथ ही आता है। क्रिकेट मैच दिखाने ले गये थे तब कितना मजा आया था।"

"चाची भी आ रही हैं न ? जीतू भैया और पम्मी जीजी भी ?" बड़े ने माँ से पूछा।

"सब आ रहे है।"

"बस, फिर ठीक है।" छोटे ने कहा, "अब तो एक महीने की नहीं, दो महीनों की छुट्टी हो जाये।"

अन्दर कमरे में चाय पीते रामसेवक ने ये बातें सुनी और उसे लगा, अब मैं चाहे कुछ भी कहूँ ओमप्रकाश आकर ही रहेगा। लेकिन उसकी झुंझलाहट खत्म नहीं हुई। उसे यही लगता रहा कि ये लोग उसकी बात नहीं समझ रहे हैं।

बात यह थी कि दो साल पहले जब ओमप्रकाश दिल्ली आया था तब

रामसेवक नयी दिल्ली में एक किराये के क्वार्टर मे रहता था। इस बीच उसने जमुना-पार पुरानी दिल्ली में ऊदलपुर नामक एक अर्द्धविकसित कालोनी मे एक बना-बनाया मकान खरीद लिया था। इलाका बहुत गंदा था। नयी दिल्ली की-सी सुविधाएँ यहाँ बिल्कुल नहीं थीं, लेकिन मकान सस्ता मिल गया था। अपनी ग्यारह साल की अध्यापकी मे रामसेवक ने जो कुछ बचाया था, उसमें जहाँ-तहाँ से उधार लिए हुए दस हजार मिलाकर उसने मकान की कीमत तो चुका दी थी और किसी तरह दिल्ली जैसे महँगे किरायो वाले तथा नितान्त निर्दयी मकान-मालिकों वाले शहर में खुद मकान-मालिक बनकर उसे राहत-भरी प्रसन्नता भी हुई थी, लेकिन यह इलाका उसे बिल्कुल पसन्द नहीं था। पहली बार जब वह यहाँ पत्नी और बच्चो के साथ मकान देखने आया था तो निहायत बेढंगेपन से बसी हुई इस बस्ती की सँकरी और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों, मकानो के बाहर बहने वाली खुली बदबूदार नालियों, कीचड-काँदो से भरी ऊबड़-खाबड़ सड़कों, बस्ती के पास ही बने विस्तृत जोहड के सडते हुए पानी में लोटते सूअरों और इस मकान के पास ही मौजूद एक डेयरी से सडक पर फैलने वाले गोबर-कूड़े के ढेरों को देखकर उसके जी में आया था कि उल्टे पैरों लौट जाये। लड़के भी परेशान हो गये थे। लेकिन सरोज नही मानी थी। वह एक ही रट लगाये रही, "मकान बहुत सस्ते मे मिल रहा है। ऐसे मौके जिन्दगी मे बार-बार नही आते। नयी दिल्ली में बढ़ते हुए किरायों को देखो और यह सोचो कि किराये के मकान मे हरदम गरदन पर तलवार-सी लटकी रहती है। पता नहीं मकान-मालिक कब खाली करने को कह दे।"

रामसेवक ने बच्चों को अपने पक्ष में किया। इधर कोई अच्छा स्कूल न होने की बात कही। बताया कि यहाँ उनका भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा। गन्दगी से मक्खी-मच्छरों का सम्बन्ध बताकर उसने यह डर भी दिखाया कि यहाँ रहकर सब लोग हैजा और मलेरिया से मर जायेंगे। यह भी समझाया कि इससे तो अच्छा है, मकान-मालिकों के हाथों ही शहीद होते रहे। मगर सरोज ने एक नही सुनी। मकान खरीदने की उस पर ऐसी धुन सवार थी कि अपनी सोने-चाँदी की एक-एक चीज तो उसने

दे ही दी थी, रामसेवक को यह आश्वासन भी दे डाला था कि जब तक सारा कर्ज नही उतर जायेगा, वह उससे एक धोती भी लाने के लिए नही कहेगी। हारकर रामसेवक को मकान लेना ही पड़ा था। और उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि सरोज ने ही नहीं, लडकों ने भी जल्दी ही इस परिवेश के साथ अपना तालमेल बिठा लिया। यह और बात थी कि वे तीनों नयी दिल्ली के उन मकानों और कालोनियो को बड़ी शिद्दत और हसरत से याद करते थे जिनमे पहले रह चुके थे।

लेकिन रामसेवक की नाक अब भी यहाँ की बदबू से फटती है। अब भी वह दिन में यहाँ की मक्खियों और रात मे यहाँ के मच्छरों से शातिपूर्ण सहअस्तित्व का रिश्ता कायम नही कर पाया है। इसका कारण शायद यह है कि पढाता वह अब भी नयी दिल्ली के ही एक स्कूल मे है जो बड़ी साफ-सुथरी कॉलोनी मे है। वहाँ वह बस से जाता-आता है। जाते समय जमुना का पुल पार करते ही राहत-भरी एक लम्बी साँस लेता है, जैसे ऊदलपुर की जहरीली हवा से कमजोर हुए फेफडो को आक्सीजन दे रहा हो। वह कवि नहीं है पर नयी दिल्ली मे पहुँचते ही काव्यात्मक ढग से सोचने लगता है : ये अमल-धवल इमारतें, ये साफ और चिकनी सडकें, ये हरी घास और फुलवारियों वाले पार्क, ये खूबसूरत फव्वारोवाले चक्कर-चौराहे, ये चमकते-दमकते बाजार और ये साफ-सुथरे शरीफ लोग मुझे कितने अच्छे लगते हैं। मेरी दुनिया तो यही है। मेरा स्वर्ग तो यही है। लेकिन जब वह वहाँ से लौटता है तो ऊदलपुर के स्टैंड पर बस से उतरते ही उसे बेहद कोफ्त होने लगती है। उसका दिमाग भन्ना जाता है।

उसकी कोफ्त का एक कारण यह भी है कि दिल्ली आकर पिछले ग्यारह वर्षों मे उसने जो मित्र बनाये है वे सब प्राय: नयी दिल्ली के स्वर्ग में रहते है जबकि वह इस नरक मे आ पडा है जहाँ वह अपने किसी मित्र को अपने घर चाय पीने के लिए बुलाते भी डरता है। हालाँकि उसके घनिष्ठ मित्र खुद ही आग्रह करके उसका मकान देखने आ चुके है और केवल पैंतीस हजार मे इतना अच्छा मकान मार लेने के लिए ईर्ष्याभरी प्रशसा भी करते हैं उसकी, फिर भी उसे लगता है कि यहाँ रहकर वह लगातार बेवजह जलील होता रहता है और इस मकान ने उसके पाँव

इस तरह बाँध दिये हैं कि वह इस जलालत से भाग भी नही सकता! बच्चों को शाहदरा के एक अच्छे पब्लिक स्कूल मे भेजने के बावजूद उसे लगता है कि ये चौपट हो रहे हैं। कम से कम स्वास्थ्य की दृष्टि से तो चौपट हो ही रहे है। सरोज अपने मुंह से कहती नही—और कहेगी किस मुंह से? यह बला उसी की तो मोल ली हुई है। लेकिन यहाँ आकर वह भी सुखी नही है।

यहाँ आकर उसका स्वास्थ्य आधा रह गया है। स्वभाव भी चिड़-चिड़ा-सा हो गया है। क्यो न हो? यहाँ की हर चीज तो उसमें खीज, गुस्सा, विरक्ति और भय पैदा करती है। पहले वह किसी बात पर असतुष्ट होने पर रामसेवक से लड़ लेती थी, अब उसकी समझ मे ही नही आता कि अपना क्रोध किस पर उतारे। कभी कहती है, दिल्ली वह भी है, दिल्ली यह भी है, लेकिन उस दिल्ली को सुन्दर बनाने के लिए करोड़ो रुपया हर साल खर्च किया जा रहा है, इस दिल्ली में मरी सफाई तक नही करायी जाती। जैसे यहाँ इंसान नही, जानवर रहते हैं।" कभी कहती है, "सरकार भी क्या करे बेचारी। उसने तो कहा नही था कि आओ लोगो, ऊदलपुर में बस जाओ। साथवाली बता रही थी कि यह ऊदलपुर पहले गाँव था। जहाँ मकान बन गये हैं वहाँ पहले खेती होती थी। गाँव रहता तो कम से कम यही सोचकर सतोष कर लेते कि चलो, गाँव है, पर यह तो कमबख्त गाँव रहा न शहर। मकानों के लिए जमीन बिकनी शुरू हुई तो जहाँ जिसको मिली, वहीं अपनी समवाई के मुताबिक झोपड़ा डालकर बैठ गया। गलियाँ देखो, टेढ़ो-मेढ़ी। कही-कही तो इतनी सँकरी हैं कि दो आदमी साथ नही चल सकते। मकान कोई छोटा है कोई बड़ा। कोई ऊँचा है कोई नीचा। कच्चे झोपड़े की बगल में पक्का तिमंजिला मकान खड़ा है। किसी पैसेवाले ने बढ़िया कोठी बना ली है पर उसके पीछे पोखर मे सूअर लोट रहे हैं। हलवाई की दुकान के पास कोयले की टाल है, आटे की चक्की के पास आरा मशीन चल रही है, तो चायवाले की दुकान के ऊपर तेजाब का कारखाना है। कोई चीज साफ मिल जाये तो जानूँ। ऊपर से हर चीज के दाम दूने। कोई ढंग की चीज लेनी हो तो शाहदरा या दिल्ली दौड़ो। शाहदरा जाने

के लिए भी रिक्शेवाला कम से कम डेढ रुपया माँगता है। नही तो डेढ मील चलकर बस पकड़ो और उसमे धक्के खाओ मुफ्त मे।"

रामसेवक कभी-कभी छेड देता है, "तुमको ही मकान-मालकिन बनने की पड़ी थी। मैंने तो कितना समझाया था कि बेवकूफ लोग मकान बनाते हैं, समझदार उनमे रहते हैं।"

"तुम्हारी यही बात मुझे अच्छी नही लगती।" सरोज चिढ जाती है, "जब देखो यही ताना मारते रहते हो। दुनिया मे कौन आदमी अपने सिर पर अपनी छत नही चाहता ? और तुमने मकान के लिए किया क्या है जो ताने देते हो ? दूसरे आदमी मकान बनवाने के लिए लाख धधे करते हैं, तुमने आज तक क्या किया है ? सूखी तनखा लाकर हाथ पर रख दी और बस। कहा कि दो-चार ट्यूशनें ही पकड़ लो तो तिनक गये। सवेरे के निकले घर से, पढ़ाने के बाद यहाँ-वहाँ दोस्तो के साथ मौज मारी, घर आकर घंटे-भर बच्चो को पढाने का नाम किया और बस, अखबार या किताब लेकर बैठ गये।"

"तो मेरी जगह तुम पढा आया करो, मैं घर का काम कर लिया करूँगा।" रामसेवक ऐसी बातों को हँसी मे उड़ा देने में ही अपनी कुशल समझता है।

लेकिन सरोज को ऐसी हँसी जहर लगती है। कहती है, "कर लिया तुमने घर का काम। चाय का प्याला भी तो शऊर से धो नही सकते। और, घर के काम के लिए तुमसे कह कौन रहा है ? कह रही हूँ कि तुम जरा हाथ-पाँव हिलानेवाले हुए होते तो हमें इस नरक मे पनाह न लेनी पड़ती। गदगी और परेशानी तो कोई झेल भी ले, यहाँ तो जान साँसत मे पड़ी रहती है। यहाँ तमाम गुडे-बदमाश भरे पड़े हैं। रेल की पटरी के उस तरफ थाना है, लेकिन इस तरफ दिन-दहाड़े खून हो जाते हैं। नेतागीरी भी ये ही करते हैं, इसलिए इनको पकडनेवाला भी कोई नही। बोले सो मारा जाये। लड़के जब तक स्कूल से लौटकर नही आ जाते, मेरा तो कलेजा धड़कता रहता है। तुमको लौटने मे कभी रात हो जाती है तो जी बैठने लगता है।"

"तो ऐसा करते हैं कि इस मकान को किराये पर उठा देते है और

खुद चलकर कही किराये का मकान देखते हैं।" रामसेवक महज कहने के लिए ऐसा नही कहता, वह सचमुच ऐसा कर डालना चाहता है। दिल्ली में बहुत-से लोग ऐसा करते हैं। लेकिन सरोज के लिए इससे ज्यादा मूर्खतापूर्ण बात और कोई नही। कहती है, "अपना मकान छोड़ कोई मूरख ही किराये पर रहने जायेगा। यह और कोई कालोनी नही, ऊदलपुर है। यहाँ मकान किराये पर उठाने के बाद किराया वसूल करने तुम आओगे? यहाँ आकर कई किस्से सुन चुकी हूँ। लोगो ने मकान किराये पर दिये और मकान तो मकान, अपनी जान से भी हाथ धोये। कई ऐसे बदमाश किरायेदार यहाँ इसी तरह दूसरों के मकानों पर कब्जा किये बैठे हैं।"

आज भी रामसेवक अगर सरोज से बहस करता तो बातें लगभग इसी ढंग की होती। इसीलिए वह उस समय चुप रह गया। लेकिन ओमप्रकाश की चिट्ठी ने जो परेशानी उसके दिमाग में पैदा कर दी थी वह दूर नही हुई। कैसे वह इस नरक में छोटे भाई, उसकी बहू और उसके बच्चों को बुला ले? वे क्या सोचेंगे? और जब वे लोग यहाँ से लौटकर अम्मा-बाबूजी को और नाते-रिश्तेदारो को बतायेंगे कि मैं कैसी गदी जगह में रहता हूँ, तो वे लोग क्या कहेंगे? और फिर ओमप्रकाश भोपाल जैसे खूबसूरत शहर में साफ-सुथरे क्वार्टरो में रहनेवाला आदमी। बहू पढ़ी-लिखी और अच्छे खाते-पीते घर की है। बच्चे भी अच्छे स्कूल में पढ़ते हैं। यहाँ आकर उन सबको कैसा लगेगा? कही घिन के मारे उल्टे पाँव न लौट जायें। नैतिकता वगैरह को ओमप्रकाश जानता नही। एक तो उसकी नौकरी ऐसी है कि उसमे ऊपरी आमदनी खूब होती है, दूसरे इसमें उसे कोई सकोच भी नही होता। मेरे आदर्शवाद का मजाक उड़ाता रहता है। यह जगह देखकर तो उसे और भी मसाला मिल जायेगा। कही यह न कह दे कि भैया, तुम्हारे आदर्शवाद के इनाम में मिली इस गदगी में मेरा गुजारा नही, मैं तो जाता हूँ किसी होटल मे रहने।

रात को इसी चिंता में रामसेवक को देर तक नीद नही आयी। अचानक उसे एक उपाय सूझा। सरोज से उसने कहा, "सुनो जी, हमने

कभी एल०टी० सी० नही लिया। एक महीने की छुट्टी स्कूलों मे हो ही रही है। ऐसा क्यों न करें कि दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल चलें? ओमप्रकाश को लिख देंगे कि हम बाहर जा रहे है।"

"और यह भी लिख देना कि अपना मकान भी झोले मे डालकर साथ लिए जा रहे है।" सरोज ने उसका मजाक उडाते हुए कहा, "सगे भाई का मकान दिल्ली में बंद पडा रहेगा और वे लोग जाकर किसी होटल में ठहरेंगे? फिर एल० टी० सी० क्या मुफ्त मे मिल जाता है? सरकार जाने-आने का किराया ही तो देगी, बाकी जो खर्च करना पड़ेगा अपनी गाँठ से, वह कहाँ से आयेगा? और लडको की सोचो। लड़के एशियाड छोड़कर दक्षिण भारत देखने जायेंगे?"

"तो फिर क्या करें?" रामसेवक चारो तरफ से घिरकर बोला।

"कुछ मत करो, सो जाओ।" सरोज ने झुंझलाहट के साथ कहा। लेकिन फिर उसे लगा कि वह सारी शाम रामसेवक पर झल्लाती ही रही है, जबकि रामसेवक वाकई परेशान है, और उसकी यह परेशानी एकदम अकारण भी नही है। इसलिए सहानुभूतिपूर्वक समझाते हुए बोली, "यों सोचो कि हम जो कुछ भी है उसके अलावा तो और कुछ हो नही सकते। हमारे पास बेईमानी का पैसा तो था नही कि नयी दिल्ली मे कही आलीशान कोठी बनवाते। पेट काटकर जितना जोड पाये, उसमें कर्ज-कड़वा मिलाकर जैसा मकान ले सकते थे वैसा ले लिया। अब आनेवाले वही आयेंगे जहाँ इसान रहेगा। दरवाजा उनके लिए खुला है, रूखी-सूखी जैसी खुद खाते हैं उनको भी खिला देंगे। अगर वे ज्यादा ही अमीर हैं और हम गरीबों के पास नही रह सकते, तो भाई, जहाँ मन करे चले जायें। कोई क्या कहेगा, यह सोचकर चले तो आदमी जिंदगी में एक कदम न चल पाये।"

सरोज की इस बात ने रामसेवक को शात कर दिया। उसके मन मे पत्नी के लिए प्यार उमड़ आया। कभी-कभी यह कैसी समझदारी की बातें करती है, यह सोचते हुए वह उस रात चैन मे सो गया। लेकिन बातों से आदमी की चिंताएँ दूर हो जायें तो दुनिया मे कौन दुखी रहे? आदमी जो कुछ है, उतना ही अपने को मान ले तो जीवन में करने के लिए बचे ही क्या?

अगले दिन सुबह उठते ही रामसेवक को फिर वही चिंता सताने लगी कि ओमप्रकाश के आने पर क्या होगा। छोटे भाई के लिए उसके मन मे प्यार तो खूब था, लेकिन उसकी मारू-खाऊ विचारधारा को वह पसन्द नही करता था। इसीलिए जब ओमप्रकाश उसको आदर्शवादी कह कर चिढाता था तो उसे बहुत बुरा लगता था। लेकिन वह सरोज की तरह यथार्थवादी भी नही हो पाता था। कोई भी काम करते समय उसके मन में यह खयाल जरूर आता था कि दूसरे क्या कहेंगे। कोशिश करता कि कोई कभी उस पर किसी बात के लिए उँगली न उठा सके। स्कूल में मन लगाकर बच्चो को पढ़ाता। प्रिंसिपल को अपने काम से सन्तुष्ट रखता, लेकिन स्वाभिमान बनाये रखने के लिए उसकी चापलूसी कभी न करता। सहकर्मियो से वह प्रेम और आदर का बरताव करता लेकिन सिद्धांत की बातों पर अड़ जाता और लड़ भी बैठता। यही रवैया उसका अपने परिवार के लोगों में था। पिता उसे पुलिस की नौकरी में डालना चाहते थे और वह पुलिस के भ्रष्टाचार से नफरत करता था। इस पर पिता से तकरार हुई और वह खाली हाथ घर छोडकर निकल पड़ा। दहेज और जात-पाँत मे विश्वास नही करता था, इसलिए तमाम नाते-रिश्तेवालों की नाराजगी उठाकर भी उसने दिल्ली में नौकरी मिलने के बाद अपनी मर्जी से, और एक पाई दहेज लिये बिना, सरोज से शादी की थी। और आज तक उसे अपना यह आदर्शवाद कभी गलत भी नही लगा। हाँ, उसे यह बात जरूर बुरी लगती थी कि वह दूसरों में तमाम बुराइयाँ देखते हुए भी उनके साथ प्रेम और आदर का बरताव करता है, तो दूसरे उसके आदर्शवाद को उपहास की वस्तु बनाकर उसका तिरस्कार क्यों करते हैं।

उस दिन वह रोज की तरह स्कूल जाने के लिए निकला। जमुना का पुल पार करने तक वह सुस्त-सा बैठा रहा, लेकिन बस जब सुन्दर दृश्यावली के बीच साफ-चिकनी सड़क पर दौडने लगी तो उसने आदतन एक राहत की साँस ली और बाहर देखने लगा।

एक मोड पर बड़ा-सा पीला साइनबोर्ड पिछले कई वर्षों से लगा था, उस पर लिखा था : आपका शहर सुन्दर है, इसे साफ रखने में हमारी

मदद करें।इस इबारत को रामसेवक प्रायः रोज ही पढ़ता था और 'रखने' के 'ने' पर लगी हुई अनावश्यक बिंदी उसे बहुत खटकती थी। कई बार उसने बस में साथ बैठे हुए यात्रियों को वह बेहूदी गलती दिखायी थी। स्कूल मे भी इसकी चर्चा की थी। कई बार पूरी इबारत का मजाक उड़ाया था। जब से ऊदलपुर रहने लगा था, यह इबारत उसे जहाँ भी दिख जाती, वह मन ही मन बडबडाने लगता--हर जगह वही गलती। हर जगह। किसी बेवकूफ अधिकारी ने यह गलत इबारत लिखकर पेंटर को दे दी होगी और मक्खी पर मक्खी मारने वाले पेंटर ने हर साइनबोर्ड पर हू-ब-हू उतार दी। और यह शहर कैसा अजीब है कि लाखो लोग रोज इस इबारत को पढ़ते होंगे, किसी से इतना नही हुआ कि इस गलती को ठीक कराने के लिए कुछ करता। एक बार उसने खुद यह बीडा उठाने की सोची थी। अखबार के सम्पादक के नाम पत्र लिखने बैठा था और उसने पाया था कि एक प्रश्न उसके मन मे अटक गया है : क्या शहर सुन्दर है? और उसने सपादक के नाम पत्र लिखने का विचार बेकार समझकर छोड़ दिया था।

आज वह साइनबोर्ड फिर दिखायी दिया तो अचानक रामसेवक के दिमाग मे रोशनी-सी कौंधी। एकाएक वह उस कौंध को पकड नही पाया, लेकिन उसे लगा कि साइनबोर्ड ने उससे कुछ कहा है। थोडी देर बाद उसे लगा, जैसे धुँधलके मे भक्क से उजाला हो गया है और वह अपने आपसे बोला—बिंदी की गलती को गोली मारो। गलती इसान से हो ही जाती है। अभिप्राय को पकड़ो। साफ-साफ तुमसे कहा जा रहा है कि शहर को साफ रखने मे हमारी मदद करें। हाँ, यह तुमसे ही कहा जा रहा है, बिल्कुल तुम्ही से! और तुमसे क्यो न कहा जाये। तुम एक पढ़े-लिखे सभ्य नागरिक हो। अध्यापक हो। आदर्शवादी भी हो।

इसके बाद रामसेवक सारे दिन इसी उधेड़बुन मे रहा कि शहर को साफ रखने मे वह कैसे मदद कर सकता है। आखिर उसे एक तरकीब सूझ ही गयी। घर आकर उसने सपादक के नाम पत्र लिखने के लिए आसन जमाया और कई कागज लिखने, फाड़ फेंकने के बाद बड़ी मेहनत से एक पत्र पूरा किया और खूब सोच-समझकर खुद ही उस पर एक शीर्षक

दे डाला : क्या एशियाई खेलों के समय दिल्ली में आनेवाले मेहमान केवल विदेशी होंगे ? पत्र में उसने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया था कि मेहमान देशी भी होंगे और वे सब के सब होटलों में नहीं, बल्कि अपने संबंधियों और मित्रों के यहाँ भी ठहरेंगे जोकि हो सकता है, दिल्ली की गन्दी बस्तियों में रहते हों। इसमें सन्देह नहीं कि प्रशासन दिल्ली की सफाई और सजावट में दिन-रात एक कर रहा है और नयी दिल्ली तो सचमुच अभी से दुलहिन-सी नजर आने लगी है, परन्तु शायद प्रशासन का ध्यान पुरानी दिल्ली पर, और विशेष रूप से जमुना-पार की बस्तियों की सफाई की ओर नहीं गया है, जबकि इस बात की पूरी संभावना है कि एशियाई खेल देखने के लिए आनेवाले बहुत-से देशी मेहमान इन बस्तियों से आकर भी ठहरेंगे। यदि वहाँ सफाई न की गयी तो क्या राजधानी की नाक न कट जायेगी ? अतः अधिकारियों से अनुरोध है कि वे इन बस्तियों की सफाई की ओर भी समुचित ध्यान दें।

अगले दिन इस पत्र की तीन प्रतियाँ बनाकर उसने तीन दैनिक अखबारों को भेज दी और दो दिन बाद उसे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तीन में से दो अखबारों ने उसका पत्र प्रकाशित कर दिया है। एक ने पूरा-पूरा और दूसरे ने कुछ संक्षिप्त करके। उसे विश्वास था कि उन पीले साइनबोर्डों में शहर को साफ रखने के बारे में उससे जो मदद माँगी गयी थी, वह उसने कर दी है, और अब ऊदलपुर की सफाई होने में देर नहीं लगेगी। पत्र के साथ उसका पता छपा था और उसमें ऊदलपुर का नाम था, इसलिए प्रशासन का ध्यान दूसरी बस्तियों की तरफ चाहे न भी जाये, ऊदलपुर के ऊपर तो जरूर ही केंद्रित होना चाहिए।

सरोज को रामसेवक ने पत्र लिखने की बात पहले नहीं बतायी थी। क्या पता, अखबार वाले न छापें और उसे सरोज के सामने नीचा देखना पड़े। जिस दिन पत्र छपा, वह दोनों अखबार लेकर घर लौटा। सरोज और दोनों लड़कों को पास बिठाकर उसने अखबार खोले और अपना कारनामा दिखाया। जैसी कि उसे आशा थी, तीनों बहुत खुश हुए। लड़के तो अखबार लेकर फौरन गली में अपने दोस्तों को दिखाने दौड़ गये। सरोज ने सराहना भरे स्वर में कहा, "तुम तो बड़े छुपे रुस्तम

निकले। मैं समझती थी कि अखबारो मे बड़े-बड़े लोगों के ही नाम छपते है।"

"अरे, अभी तुम अपने पति को जानती नही हो।" रामसेवक ने वड़प्पन के साथ कहा और उठ खडा हुआ, "जरा यह तो देखू कि यहाँ के लोगो पर क्या प्रतिक्रिया हुई है।"

दो साल ऊदलपुर मे रह चुकने के बावजूद रामसेवक यहाँ के लोगों में घुलमिल नही पाया था। मुश्किल से आठ-दस लोगों को ही ठीक से जान पाया था, जिनमे से कुछ दुकानदार थे, जिनसे खरीदारी करने के कारण उसका वास्ता पडता था, और तीन-चार वे, जो उसे गाधी वाचनालय जाने पर मिल जाया करते थे। वाचनालय एक बुजुर्ग चलाते थे, जो पुराने गाधीवादी स्वतन्त्रता-सेनानी थे और जिन्हे लोग भाईजी कहते थे। भाईजी पुराने ऊदलपुर गाँव के ही निवासी थे। नीम के पेड वाले एक बडे घेर मे उनका पुराने जमाने का पक्का मकान था, जिसके बरामदे में काठ का एक बडा भारी लम्बा-चौडा तख्त पडा था। उस तख्त पर भाईजी के साथ बैठे दो-चार बूढे-ठलुए लोग हिंदी-उर्दू के अखबार बाँचते रहते थे। फुरसत के समय कुछ छात्र, अध्यापक और क्लर्कनुमा लोग भी वहाँ घटे-आध घटे बैठकर अखबार पढ़ आते थे। पिछले दिनों ऊदलपुर में क्या-क्या हुआ, इसकी भी जानकारी वहाँ मिल जाती थी। भाईजी के पास दूसरों को सुनाने के लिए अपने स्वतन्त्रता-संग्राम का पूरा इतिहास था और वे मौका मिलते ही उसका कोई अध्याय लगभग जबर्दस्ती सुनाने लगते थे। दूसरे लोग बुडबक समझकर उनकी बातो पर ज्यादा ध्यान नही देते थे, लेकिन रामसेवक उनकी बातें धैर्य और रुचि के साथ सुन लेता था, इसलिए भाईजी उसे बहुत मानने लगे थे और वाचनालय में आने वाले हर आदमी से उसकी तारीफ किया करते थे। शायद भाईजी के इस प्रचार का ही यह असर था कि ऊदलपुर मे रामसेवक को राह चलते नमस्ते करने वाले ऐसे कई लोग मिल जाते थे, जो उसे जानते थे, पर वह उन्हें नही जानता था।

उस शाम वह वाचनालय पहुँचा तो पाँच-छह लोग बैठे हुए थे और दिल्ली मे फैले हुए डेंगू फीवर पर बहस चल रही थी कि यह बुखार अम-

रीका ने फैलाया है या रूस ने ! भाईजी तख्त पर एक कोने में बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। रामसेवक को देखते ही बोले, "आओ जी मास्टरजी ! अखबार में तुम्हारा खत पढ़ लिया है। अच्छी जबान लिख लेते हो। पर तुम क्या समझते हो, ऐसे खत लिखकर ऊदलपुर की सफाई करवा लोगे ? बेटाजी, ऐसे खत हमने बहुत लिखें हैं। दूसरे लोग भी लिखते रहते हैं ! पर समझ लो, कुछ नही होने का।"

दूसरे लोग भी शायद पढ चुके थे। डेंगू की बात भूलकर ऊदलपुर की सफाई की बात करने लगे। उनका विचार भी वही था जो भाईजी ने व्यक्त किया था। बल्कि एक-दो ने तो यह कहकर रामसेवक का मजाक भी उड़ाने की कोशिश की कि मास्टरजी मामूली आदमी नही है, इनका पत्र पढ़ते ही सरकार अपनी नाक बचाने के लिए झाड़ू-टोकरा लिये ऊदलपुर की सफाई करने दौड पड़ेगी।

रामसेवक को बड़ी निराशा हुई। लेकिन साथ ही यह भी लगा कि इस झटके के लिए मन में कही शायद वह पहले से ही तैयार था। इसलिए हँसकर बोला, "वह पत्र तो भाईजी, मैंने यो ही मजाक में लिख दिया था !" लेकिन कहते ही उसे लगा कि नही, ऐसी बात नही है। मजाक मे नही, उसने पूरी संजीदगी के साथ और इस उम्मीद से लिखा था कि उसका कुछ परिणाम अवश्य निकलेगा। इसलिए उसने फिर कहा, "लेकिन भाई-जी, कुछ होना तो जरूर चाहिए।"

एक सज्जन बोले, "अजी, कुछ भी कर लो मास्टरजी, ऊदलपुर की गदगी दूर नही हो सकती ! अगर आप इसको नयी दिल्ली बनाना चाहते है तो पहले इस पर बुलडोजर चलाकर इसको समतल बनाइए और तब योजनाबद्ध ढंग से यहाँ पर नयी बस्ती बसाइए।"

रामसेवक के दिमाग में खुद यही बात कई बार आ चुकी थी। जब-जब वह बहुत परेशान हो जाता था, कुछ इसी ढंग की बात सोचा करता था। लेकिन उसे यह कम से कम अपनी जिदगी में तो संभव नही लगता था।

दूसरे सज्जन बोले, "जब तक पूंजीपतियों की सरकार कायम है, तब तक यहाँ की हालत में कोई मामूली सुधार भी नही हो सकता। लेकिन

जब वोट देने की बात आती है तब तो यहाँ के लोग नोट जेब में रखकर और दारू की बोतल पीकर अपना वोट काँगरेस के हाथ पर रख आते हैं।"

तीसरे सज्जन यह सुनकर भड़क उठे। बोले, "तुम लोगों की जनता सरकार ने ही क्या कर लिया था? आपस मे लड़-लड़कर मर गये। ऊदलपुर जैसा था वैसा ही रहा। काँगरेस ने कुछ तो किया है। यह बस्ती पहले गैरकानूनी थी, उसने इसे रेग्यूलराइज किया। यहाँ पहले बिजली नही थी, उसने बिजली दी। यहाँ पहले पानी नही था, उसने घरों में न सही सडकों पर तो पाइप लगवा ही दिये। और सडकें भी···"

"यह सब किया उसने वोट लेने के लिए। किसी से पूछ लो, ये चीजें चुनावों के वक्त मिली हैं या कब?" दूसरे सज्जन बौखलाकर बात काटने लगे।

तीसरे जोर से चिल्लाने लगे, "तुम लोगों को सरकार को गाली देने के सिवा कोई काम नही। यह नही देखते कि ऊदलपुर के लोग कैसे हैं। यहाँ सिविक सेंस है किसी मे? घर का कूडा उठाया और बीच सडक पर डाल दिया। किसी ने ऊपर से ही फेंक दिया चाहे नीचे किसी के सिर पर ही गिरे। सरकारी नलों से पानी सब लेंगे, बिना बारी आये भरने के लिए एक-दूसरे के सिर पर बाल्टियाँ मारेंगे और रोजाना फिसाद फैलायेंगे, लेकिन पानी भरने के बाद नल बंद करने की याद किसी को नहीं रहती। पहले पीतल की टोटियाँ लगी थी, रातोरात उड गयी। फिर प्लास्टिक की लगीं, दूसरे दिन तोड़ दी गयी। लोहे की लगायी गयी, सब खराब कर दी गयी। अब अगर सारे दिन पानी बहता है और सड़कों पर कीचड़-काँदो होता है तो सरकार इसमे क्या करे?"

रामसेवक ये सारी बातें जानता था और ऐसी बहसें बहुत बार सुन चुका था। थोडी देर बाद उसने सुनना बन्द कर दिया और कुछ सोचने लगा। फिर अचानक उसने भाईजी से कहा, "क्यों भाईजी, आप एक दिन बता रहे थे कि आजादी के आंदोलन के दिनो में आप लोग सफाई वगैरह के तामीरी काम किया करते थे?"

भाईजी ने हुक्का गुड़गुड़ाना बंद कर दिया। मोटे शीशों वाले

कमानीदार चश्मे से झाँकती उनकी आँखों में चमक-सी आ गयी। सीधे होकर बैठते हुए बोले, "अरे बेटाजी, उन दिनों की क्या पूछते हो। वह जमाना ही और था। बापू ने हमसे खुद कहा—बलदेवसिंह, अपने गाँव में कुछ तामीरी काम करो। कौमी गीत गाते हुए सवेरे-सवेरे प्रभातफेरी तो हम लोग करते ही थे। दूसरे दिन हमने क्या किया कि हम पाँच-छह आदमी प्रभातफेरी के वक्त झाड़ू-टोकरा लेकर निकल पड़े। कौमी तराने गाते जाते हैं और गली में सफाई करते जाते हैं। लोगबाग उठकर बाहर आते हैं तो क्या देखते हैं कि हम लोग बुहार रहे हैं और कूड़े का टोकरा अपने सिर पर उठाकर घूरे पर डालने जा रहे हैं। अब कोई तो हमारे हाथों से झाड़ू छीन रहा है, कोई टोकरा छुड़ा रहा है। सब कहते हैं—हम करेंगे, हम करेंगे। और लो जी, चार दिन में यही ऊदलपुर जगमगाने लगा। कहीं भी निकल जाओ, मजाल है जो कूड़े का तिनका भी कहीं नजर आये!"

"तो भाईजी, क्या अब हम फिर से यह काम शुरू नहीं कर सकते?"

रामसेवक के इस सवाल को सुनकर दूसरे लोग हँसने लगे। उनमें से अभी जो सरकार की तरफदारी कर रहे थे, रामसेवक की हँसी उड़ाते हुए बोले, "लगता है, मास्टर साहब को नेतागीरी करने की धुन सवार हुई है। पर मास्टर साहब, आजकल नेतागीरी बड़ी महँगी पड़ती है। नगर निगम का भी इलेक्शन लड़ना है तो लाख दो-लाख रुपया लगाने को तैयार रहिए।"

रामसेवक ने कहा, "देखिए, मुझे न तो कोई चुनाव लड़ना है, न मैं कोई नेता बनना चाहता हूँ, और न मुझे यह मुगालता है कि हमारे करने से ऊदलपुर की सफाई वास्तव में हो जाएगी। फिर भी हम चाहें तो इतना तो कर ही सकते हैं कि मिल-जुलकर अपने-अपने मुहल्ले को थोड़ा साफ रखें और गंदगी के खिलाफ आवाज उठाकर नगर निगम पर दबाव डालें कि वह इधर भी ध्यान दे। जब करोड़ों रुपया सरकार एशियाड पर बहा सकती है तो…"

"यह नेतागीरी नहीं है तो और क्या है?" उन सज्जन ने रामसेवक से सीधा सवाल किया। रामसेवक सिटपिटा गया और मदद के लिए

भाई जी की ओर देखने लगा।

भाईजी इस सज्जन को समझाने लगे, "बेटाजी मास्टरजी सही कह रहे हैं। अरे, कुत्ता भी कहीं बैठता है तो पूंछ से जगह साफ कर लेता है, हम तो इंसान हैं।" फिर रामसेवक से कहा, "आप एक मीटिंग करो बेटाजी, लोगों को अपने साथ लो और काम शुरू करो। सबसे पहले हमारा नाम लिस्ट में लिख लो। आधी रात भी बुलाओगे तो भी उठकर चले आयेंगे।"

दूसरे लोगों ने भाईजी का मजाक उड़ाया और रामसेवक को समझाया कि ये सब पुरानी बातें हैं, पुराने वक्तों के साथ गयीं। अब इस तरह के कामों से कुछ नहीं होता। पहली बात तो यह है कि लोग सफाई के लिए आयेंगे ही नहीं। आप बुलाने जायेंगे तो सवाल तरह की मीन-मेख निकालेंगे, आनाकानी करेंगे, आपकी नीयत पर शक करेंगे और इरादों को भाँपने की कोशिश में तमाम तरह की अफवाहें फैलायेंगे। आप अपनी नेकनीयती की चाहे जितनी कसमें खायें, लोग यही कहेंगे कि जरूर इसमें आपका कोई निजी स्वार्थ है।

रामसेवक के मन में आया, कह दे कि हाँ, थोड़ा निजी स्वार्थ तो है। मेरा छोटा भाई एशियाड देखने दिल्ली आ रहा है और मैं नहीं चाहता कि वह मुझे इस गंदगी में पड़ा देख मुझ पर थू-थू करे। लेकिन मेरा यह छोटा-सा स्वार्थ पूरा होने से अगर अदलपुर में सफाई अभियान चल पड़े तो क्या बुरा है? सब लोगों को लाभ होगा। लेकिन वहाँ बैठे लोगों का मूड देखकर उसने यह बात कही नहीं। मीटिंग के बारे में सोचने लगा कि कब, कहाँ और कैसे होगी। उसने कभी कोई मीटिंग नहीं बुलायी थी और जानता भी नहीं था कि कैसे बुलायी जाती है।

तभी भाईजी ने कहा, "अरे सुनो मास्टर जी, तुम कहाँ बुलाते फिरोगे मीटिंग, ऐसा है कि यहाँ कारपोरेशन का प्राइमरी स्कूल खुला है। [illegible] तारीख को देसराज उसका उद्घाटन करने आ रहे हैं। [illegible] को सदारत के लिए बुलाया गया है। देसराज पुराने कांग्रेसी नेता हैं। [illegible] भी इसी इलाके से लड़ते हैं। मैं जलसे में तुमको बुलाने का मौका [illegible] दिलवा दूंगा। वहीं तुम अपनी बात कह देना। [illegible]

[illegible]

के कान मे भी बात पड जायेगी । एक पंथ दो काज ।"

रामसेवक खुश हो गया। घर आकर उसने सरोज को बताया कि अब ऊदलपुर की सफाई होकर रहेगी । रात को वह बड़ी देर तक भाईजी का गुणगान करता रहा । दो तारीख आने में अभी पाँच दिन बाकी थे, लेकिन वह उसी रात अपना भाषण तैयार करने में जुट गया।

उन पाँच दिनों में ऊदलपुर के सफाई-अभियान को लेकर कहाँ क्या कानाफूसी हुई, इसका पता रामसेवक को नही चला । मगर लोग अपना काम कर रहे थे । सबसे पहले तो देसराजजी के पास खबर पहुँची कि अगले चुनाव के लिए ऊदलपुर से मास्टर रामसेवक आपका प्रतिद्वंद्वी बन कर उभरना चाहता है । फिर ऊदलपुर मे सुगबुगी हुई । किसी ने जगह-जगह अपनी दुकानें खोले बैठे डाक्टरो से कहा—अपनी दुकान बढाओ डाक्टर साहब ! मास्टर रामसेवक ने ऊदलपुर की सफाई का बीड़ा उठा लिया है । गदगी न होगी तो बीमारियाँ कहाँ रहेंगी ? और बीमारियाँ न रही तो आप क्या करेंगे ? मारने के लिए मक्खियाँ भी नही मिलेंगी ! किसी ने डेयरीवाले चौधरी से कहा—चौधरी साहब, अपनी भैंसों को कही और हाँक ले जाओ । इनसे बहुत गदगी फैलती है । मास्टर रामसेवक का सफाई-अभियान शुरू होने वाला है । सबसे पहले तुम्हारी डेयरी पर हमला होगा । किसी ने जोहड़ के किनारे झुग्गियो में रहने वाले जमादारो से कहा—समझ लो कि कारपोरेशन के सफाई-कर्मचारियों की नौकरी तो गयी । दो तारीख को देसराजजी आ रहे हैं और मास्टर रामसेवक उनसे तुम्हारी शिकायत करने वाले हैं कि तुम लोग सफाई नही करते, उल्टे गंदगी फैलाते हो । तुम्हारे सुअर सारे ऊदलपुर में लोटते फिरते है । किसी ने थाने में जाकर एस०एच०ओ० से कहा—बड़ा खतरनाक आदमी है मास्टर रामसेवक । हमने अपने कानों से सुना है, भाईजी के गांधी वाचनालय में बैठा कह रहा था कि ऊदलपुर पर बम गिराये जायेंगे !

दो तारीख को देसराजजी स्कूल का उद्घाटन करने आये । पुलिस का बड़ा भारी बन्दोबस्त पहले ही हो चुका था । उनकी गाड़ी के साथ एक बड़े ट्रक में हथियारबन्द पुलिस और आयी । लगता था जैसे ऊदलपुर मे कोई बहुत भयानक बलवा होने वाला हो ! देसराजजी का भाषण सुनने

आये हुए लोग हैरान होकर सोचने लगे कि एक स्कूल के उद्घाटन जैसे मामूली जल्से में पुलिस के इतने भारी इन्तजाम की क्या जरूरत है ? रामसेवक ने उस दिन छुट्टी ले रखी थी और लिखकर याद किया हुआ अपना भाषण सरोज को सुनाते हुए दोहरा लिया था। लडकों को भी उसने उस दिन स्कूल नहीं भेजा था। उद्घाटन समारोह दस बजे था लेकिन वह सपरिवार थोड़ी सज-धज के साथ नौ बजे ही वहाँ पहुँच गया था। कोई समझदार आदमी होता तो वहाँ मौजूद लोगों की नजरें देखकर ही भाँप जाता कि दाल में कुछ काला है। कम से कम यह तो सोचता ही कि लोग उसे अजीब-अजीब निगाहों से क्यों देख रहे हैं और उसके परिचित लोग भी उससे कतरा क्यों रहे हैं। माथा उसका उस समय ठनका जब भाईजी वहाँ आये और उन्होंने उसे एक तरफ बुलाकर कान में कहा, "बेटाजी, मुझे माफ करना, मैं मजबूर हूँ। कल देसराज ने मुझे अपने यहाँ बुलाया था। बोले कि और किसी को इस जल्से में बोलने की इजाजत नहीं दी जा सकती। बलवा हो जाने का अंदेशा है। देख रहे हो, कितनी पुलिस आयी हुई है !"

"पर मैं कोई गलत बात तो कहने नहीं जा रहा हूँ भाईजी !" रामसेवक ने कहा। लेकिन तभी उसने देखा, पुलिसवाले उसे घूर रहे हैं। उसकी जबान सूख गयी और टाँगे काँपने लगीं।

"तुम ऐसा करो कि या तो घर चले जाओ, या शांति से चुपचाप बैठे रहो। बोलना बिल्कुल नहीं। रही तुम्हारी बात, सो वह मैं अपने भाषण में कह दूंगा।"

रामसेवक कार्यक्रम में हुए इस आकस्मिक परिवर्तन का कारण जानना चाहता था, लेकिन तभी देसराजजी की गाड़ी आ पहुँची। जिंदाबाद के नारे लगने लगें। मंच पर भाईजी की पुकार हुई। रामसेवक नासमझ-सा मंच के सामने बिछी हुई दरियों पर बैठे श्रोताओं के बीच अपनी पत्नी और बच्चों के पास जा बैठा। कुछ देर बाद देसराजजी का भाषण शुरू हुआ। आरम्भ में कुछ शब्द उन्होंने स्कूल के उद्घाटन और शिक्षा के महत्त्व के बारे में कहे। फिर अचानक वे गंदगी और सफाई के बारे में बोलने लगे। उन्होंने कहा :

"...ऐसा नहीं है कि हम अन्धकार में हैं। देश की तमाम समस्याएँ हमारे सामने दिन के प्रकाश की भांति स्पष्ट हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे देश में गंदगी है और गंदगी सफाई से ही दूर हो सकती है और ऐसा भी नहीं कि हमने सफाई का प्रयास नहीं किया। प्रयास किया है। बहुत प्रयास किया गया है, किया जा रहा है और आगे भी किया जायेगा। किन्तु प्रश्न यह है कि गंदगी कहाँ नहीं है? आप इंग्लैंड में चले जाइये, अमेरिका में चले जाइये, रूस में चले जाइये, चीन और जापान में चले जाइए। यही क्यों, आप चन्द्रमा और सूरज पर चले जाइए। गंदगी आपको वहाँ भी मिलेगी। सफाई की जरूरत आपको वहाँ भी पड़ेगी। लेकिन आपको यह भी देखना होगा कि समस्याएँ केवल आपके ही सामने नहीं हैं। समस्याएँ सरकार के सामने भी हैं। सरकार ने भारत में एशियाड कराने का फैसला किया। एशियाड एक अच्छी चीज है। होनी चाहिए। उससे देश की नाक ऊँची होती है। और नाक, नाक का बदबू से वही रिश्ता है जो देश का गरीबी से। सरकार गरीबी हटाने के लिए वचनबद्ध है। परन्तु प्रश्न उठता है कि गरीबी दूर कैसे होगी? गरीबी दूर होगी पैसे से। और पैसा कहाँ से आयेगा? पैसा एशियाड देखने के लिए आनेवाले विदेशी मेहमानों की जेब में से आयेगा। वे लोग जेबें भर-भरके लायेंगे और यहाँ खाली करके जायेंगे। अब सवाल यह उठता है कि उन विदेशी मेहमानों को हम कहाँ ठहरायें? जाहिर है कि उनके लिए हमें अच्छे-अच्छे होटल बनाने पड़ेंगे और..."

इसके बाद रामसेवक के कान जैसे अपने आप बन्द हो गये। वह अपने भीतर कहीं डूब गया। एक तसवीर-सी उसे दिखायी दी कि ओमप्रकाश बहू और बच्चों के साथ टैक्सी में ऊदलपुर आ रहा है। मुख्य सड़क से ऊदलपुर की तरफ मुड़ते ही बदबू के कारण सबने अपनी नाक बन्द कर ली है। कीचड़-काँदो में टैक्सी आगे बढ़ाने से सरदारजी इनकार कर रहे हैं। ओमप्रकाश इस उम्मीद में सरदारजी से लड़ रहा है कि यह गंदा रास्ता पार करते ही साफ-सुथरा इलाका आ जायेगा, जहाँ बड़े भाई रामसेवक की शानदार कोठी होगी। जैसे-तैसे टैक्सी रामसेवक के मकान तक आती है। सरोज और बच्चे खुश होकर उनका स्वागत करने दौड़ पड़ते हैं। रामसेवक भी मुस्कराता हुआ दरवाजे पर पहुँचता है, लेकिन देखता है कि ओमप्रकाश

कह रहा है––सरदारजी, टैक्सी वापस मोड़ लीजिए, जल्दी कीजिए, यहाँ तो एक मिनट भी ठहरना मुश्किल है, हमको किसी अच्छे होटल में ले चलिए ··

अचानक उसने देखा कि देसराजजी का भाषण समाप्त हो गया है। भाईजी का भाषण सुनने के लिए वह उत्सुक हुआ, लेकिन तभी एक व्यक्ति ने माइक पर आकर देसराजजी को धन्यवाद दिया और यह कहते हुए सभा समाप्त होने की घोषणा कर दी कि सभापति भाईजी की तबीयत ठीक नहीं है, बुजुर्ग आदमी है, हम उन्हे बुलवाकर और ज्यादा कष्ट देना नही चाहते।

श्रोता उठकर जाने लगे। देसराजजी भाईजी का हाथ पकड़े हुए मच से उतरे। वे भाईजी से कुछ कह रहे थे। फिर भाईजी ने भी उनसे कुछ कहा। सुनकर देसराजजी ने सिर हिलाया और साथ चलते हुए पुलिस-अफसर से कुछ कहा। पुलिस अफसर ने उन्हें सलाम ठोका और आदेश की प्रतीक्षा में खड़े पुलिसवालों को कुछ इशारा किया। हथियारबन्द सिपाही खटाखट अपनी गाड़ी में चढ़ गये और थोड़ी देर बाद गाड़ी चली गयी। देसराजजी की कार के साथ पुलिस के अफसरों की जीप भी चली गयी और उनके जाने के बाद बाकी सिपाही भी अपने डंडे हिलाते हुए चल दिये।

सरोज रामसेवक से पूछ चुकी थी कि उसका भाषण क्यो नही हुआ और रामसेवक इस सवाल का जवाब पाने के लिए भाईजी की प्रतीक्षा कर रहा था जो एक तरफ कुछ लोगों से घिरे हुए खड़े कुछ बात कर रहे थे। उसे लगा, यह बातचीत उसी के बारे में हो रही है। सरोज और बच्चों को वही रुकने के लिए कहकर वह उस तरफ बढ गया। पास पहुँचने पर उसने सुना, भाईजी कह रहे थे, "मेरा यकीन करो बेटाजी, रामसेवक शरीफ आदमी है। उसका कोई गलत इरादा नही है। वह तो बेचारा सरकार की मदद ही करना चाहता है।"

"आप उससे कह दीजिए, सरकार को ऐसी मदद नहीं चाहिए। एशियाड के मौके पर मददगार बन गया, इलेक्शन के दिनों में कहाँ था ?" रामसेवक ने इस दहाड़ते हुए आदमी को देखा तो उसके प्राण सूख गये। वह ऊदलपुर का दादा था। एक दिन राशनवाले ने दूर से इस आदमी को

दिखाकर रामसेवक को बताया था—"यह रामी दादा है। आठ-दस खून कर चुका है, पर बड़े-बड़े नेताओं से रसूख बना रखा है इसलिए शान से आजाद घूमता है।"

रामसेवक के पाँव थरथराने लगे। भाईजी से कुछ कहने-पूछने का विचार छोड़कर वह डगमगाते कदमों से लौट पड़ा। अपने दोनों लड़कों का हाथ पकड़ा, सरोज को चलने के लिए इशारा किया और तेजी से घर की तरफ चल दिया। सरोज और दोनों लड़के दहशत में आ गये। रास्ते भर कोई कुछ नहीं बोला।

'साक्षात्कार', मई-जून, १९८३

○○○

रमेश उपाध्याय

जन्म : १ मार्च १९४२

शिक्षा : एम० ए० और 'सातवें दशक की हिन्दी कहानी में सामाजिक समस्याएँ' विषय पर पी-एच० डी०।

कार्य : संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेज आफ वोकेशनल स्टडीज में प्राध्यापक और द्वैमासिक पत्रिका 'कथन' के सम्पादक।

कृतियाँ : जमी हुई झील, शेष इतिहास, नदी के साथ, चतुर्दिक, बदलाव से पहले, पैदल अँधेरे में, राष्ट्रीय राजमार्ग (कहानी-संग्रह); पेपरवेट, भारत-भाग्य-विधाता, सफाई चालू है (नाटक); चक्रबद्ध, दण्डद्वीप, स्वप्नजीवी (उपन्यास); तमाशा, बच्चों की अदालत (बाल-नाटक); गिरगिट, हरिजन-दहन, ब्रह्म का स्वांग, राजा की रसोई (नुक्कड़-नाटक); कम्युनिस्ट नैतिकता (बहुचर्चित वैचारिक पुस्तक)।